मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 121 ● वर्ष 13, अंक 9 ● नवम्बर 2023 ● दस रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

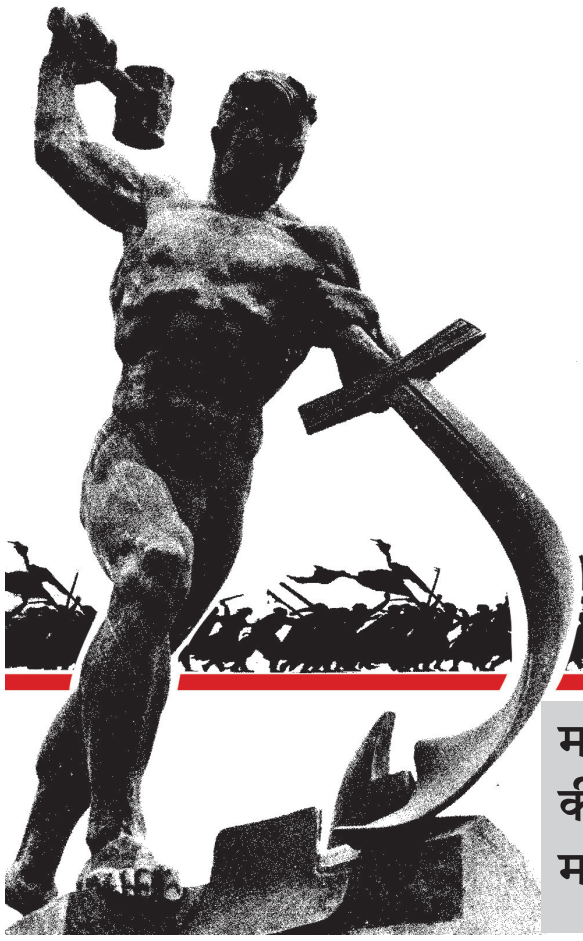

मालिकों की मुनाफ़े की हवस ले रही मज़दूरों की जान! 5

बढ़ते प्रदूषण की दोहरी मार झेलती मेहनतकश जनता 6

एंगेल्स की स्मृति में सागर जैसा हृदय, आलोकित शिखरों जैसी मेधा, तूफ़ानों जैसा जीवन 15

हम सब गाज़ा हैं!

इज़रायली सेटलर उपनिवेशवादी ज़ायनवादी हत्यारों द्वारा फ़िलिस्तीनी जनता के जनसंहार का विरोध करो !

साम्प्रदायिक फ़ासीवादी मोदी सरकार की इज़रायली ज़ायनवादी नेतन्याहू सरकार से साँठ-गाँठ का विरोध करो!

यह सम्पादकीय लिखे जाने तक गाज़ा और वेस्ट बैंक को मिलाकर इज़रायली उपनिवेशवादी हत्यारों ने 7 अक्टूबर से अब तक करीब 12,000 फ़िलिस्तीनियों का कत्ले-आम किया है। इसमें करीब 5000 छोटे-छोटे बच्चे हैं। यानी हर दिन करीब 400 लोगों की हत्या और हर दिन क़रीब 165 बच्चों की हत्या। अब तक मारे गये फ़िलिस्तीनी लोगों में हमास के योद्धा या कमाण्डर मुश्किल से 100 भी नहीं हैं। उन तक तो इज़रायली सेना पहुँच भी नहीं पा रही है और इस प्रयास में अब तक अपने 50 से ज़्यादा सैनिकों को गवाँ चुकी है। इसी हताशा में वह बेगुनाह जनता पर बमवर्षा कर रही है, जिस प्रकार सभी कायर साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी करते हैं। अधिकांश मारे गये लोग बेगुनाह फ़िलिस्तीनी लोग हैं, जो पिछले 75 वर्षों से अपनी कौमी आज़ादी के लिए लड़ रहे हैं।

फ़िलिस्तीनी जनता की इस लड़ाई का समर्थन हमारे देश में महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू व इन्दिरा गाँधी जैसे लोगों तक ने किया था। बुर्जुआ वर्ग के नुमाइन्दे होने के बावजूद उन्होंने माना था कि 1948 में लाखों फ़िलिस्तीनियों को उनकी ज़मीन से दर-बदर कर और हज़ारों फ़िलिस्तीनियों का कत्ले-आम कर इज़रायल राज्य की स्थापना वास्तव

सम्पादकीय अग्रलेख

में फ़िलिस्तीन को गुलाम बनाने और एक सेटलर औपनिवेशिक राज्य की स्थापना करना था। वे ही नहीं बल्कि दुनिया के अधिकांश देशों के बुर्जुआ हुक्मरानों ने इस बात को स्वीकार किया था, विशेष तौर पर वे पूँजीवादी देश जो एशिया, अफ्रीका और लातिनी अमेरिकी में अमेरिकी, यूरोपीय या जापानी उपनिवेशवादी गुलामी से मुक्त हुए थे। कालान्तर में कई यूरोपीय देशों ने भी इस बात को स्वीकार करना शुरू कर दिया था कि इज़रायल के नाम पर यूरोपीय ज़ायनवादी व नस्लवादी उपनिवेशवादियों ने मध्य-पूर्व में, यानी पश्चिमी एशिया में, एक उपनिवेशवादी चौकी क़ायम की है।

आधुनिक दौर में दुनिया में आज तक, बेल्जियम के अफ्रीकी उपनिवेशों व कुछ अन्य अफ्रीकी उपनिवेशों को छोड़ दिया जाय, तो इतने नरसंहार करके कम ही उपनिवेश क़ायम किये गये हैं, जितने नरसंहार करके इज़रायली सेटलर उपनिवेशवादी परियोजना को फ़िलिस्तीन में स्थापित किया गया। 1948 में फ़िलिस्तीनियों का बड़े पैमाने पर कत्ले-आम किया गया था। इस समय को फ़िलिस्तीनी जनता 'नकबा' या 'विपदा' के रूप में जानती है, जब यूरोपीय ज़ायनवादी हत्यारों ने ब्रिटेन द्वारा दिये गये हथियारों के बूते करीब 15,000 निहत्थे और बेगुनाह फ़िलिस्तीनी बच्चों, औरतों और आदमियों का बर्बर नरसंहार किया था, करीब 600 फ़िलिस्तीनी शहरों को उजाड़ दिया था, अनगिन गाँवों को जला डाला था और तत्कालीन फ़िलिस्तीन के 80 प्रतिशत बाशिन्दों, यानी करीब 7 लाख लोगों को विस्थापित कर आस-पड़ोस के देशों में शरणार्थी में तब्दील कर दिया था।

लेकिन नकबा कोई घटना नहीं थी। नकबा कभी ख़त्म नहीं हुआ और आज भी जारी है। आज भी इज़रायली सेटलर, यानी

(पेज 9 पर जारी)

बढ़ती बेरोज़गारी के ताज़ा आँकड़े और उसकी वजह

● गायत्री भारद्वाज

विकास और वृद्धि के मोदी सरकार के सभी दावों के बावजूद अक्टूबर 2023 में बेरोज़गारी ने कोविड के समय के बाद के सारे रिकार्ड तोड़ दिये। अपनी असफलताओं को छिपाने के लिए मोदी सरकार ने तो तमाम विभागों द्वारा आँकड़ों को जुटवाना ही बन्द कर दिया था। इसलिए सरकारी आँकड़ों के ज़रिये आजकल ज़्यादा कुछ पता नहीं चलता। मोदी सरकार और उसके मन्त्री झूठे दावे करने में माहिर हैं। बिना किसी सर्वे आदि के भी वे मनमाने दावे करते रहते हैं कि महँगाई घट गयी, बेरोज़गारी घट गयी, भ्रष्टाचार कम हो गया, आदि। जबकि सच्चाई यह है कि पिछले 9 वर्षों में महँगाई, बेरोज़गारी और भ्रष्टाचार सभी ने सारे रिकार्ड ध्वस्त कर दिये। अभी हम केवल बेरोज़गारी की ही बात करेंगे। महँगाई और भ्रष्टाचार पर आगे ज़रूर लिखेंगे।

सरकारी आँकड़ों में सबसे भरोसेमन्द आँकड़े राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के हुआ करते हैं। लेकिन उसमें भी बेरोज़गारी की दर को परिभाषित करने के लिए तीन पैमानों का इस्तेमाल होता है। पहला, सामान्य स्थिति; दूसरा, साप्ताहिक स्थिति और तीसरा, रोज़ाना स्थिति। ज़ाहिर है, जब तक हम रोज़गार सुरक्षा की बात न करें तो पिछले सप्ताह किसे कितने दिन काम मिला, या किसी दिये गये दिन किसे काम मिला, इसके आधार पर रोज़गार का आकलन करना जनता के साथ एक भद्दा मज़ाक है। जब तक पक्की नौकरी को परिभाषा का हिस्सा न बनाया जाय, तो अनौपचारिक क्षेत्र में कभी कुछ तो कभी कुछ काम करके किसी तरह पेट पालने वाले आम ग़रीब मेहनतकश-मज़दूर को भी सरकारी आँकड़े रोज़गारशुदा ही दिखा देंगे। वास्तव में, सभी पूँजीवादी सरकारें इसी प्रकार की चार सौ बीसी से बेरोज़गारी के आँकड़ों को कम करके दिखाती हैं। मोदी सरकार तो इसमें सारी पूँजीवादी सरकारों को पीछे छोड़ चुकी है। ऐसे में, ग़ैर-सरकारी आँकड़ों पर ही निर्भर रहा जा सकता है।

ग़ैर-सरकारी स्रोतों में सबसे भरोसेमन्द स्रोत माना जाता है सेण्टर फॉर मॉनीटरिंग इण्डियन इकॉनमी (सीएमआईई) के आँकड़ों को। यह संगठन हर हफ्ते अपने सर्वे करता है और लोगों से पूछता है कि सर्वे की तिथि पर उनके पास कोई काम था या नहीं। इसलिए लम्बी दूरी में उनके माहवार आँकड़े पूरी तरह सटीक नहीं, तो भी और स्रोतों से कुछ बेहतर होते

(पेज 4 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

तरह-तरह के साधनों से फ़ासीवादी नफ़रती विचारधारा का प्रचार करने में लगा है संघ परिवार

सन् 2014 में मीडिया द्वारा प्रचार के तहत नरेन्द्र मोदी की छवि को हिन्दू हृदय सम्राट के तौर पर जोर-शोर से पेश किया गया। इसमें पूँजीपति वर्ग ने अपना खजाना खूब लुटाया। जिसका नतीजा यह हुआ कि फ़ासीवादी मोदी सरकार सत्ता पर आसीन हुई। तब से लेकर आज तक देश के लगभग सभी राज्यों में हिन्दुत्व की नई -नई प्रयोगशालाएँ खोली जा रही हैं और तमाम हिन्दुत्ववादी नेता व मन्त्री मिलकर हर दिन यहाँ नये-नये प्रयोग कर रहे हैं, जिसमें संघ परिवार की भूमिका अहम है। ऐसा ही एक प्रयोग वाहनों के आगे-पीछे लगाये जाने वाले धार्मिक व जाति सूचक स्टीकरों का है। हालाँकि मोटरसाइकिलों, कारों के आगे-पीछे या नम्बर-प्लेट पर जाति-धर्म व सम्प्रदायसूचक स्टीकर चिपकाने का चलन बिल्कुल नया नहीं है बल्कि 2014 से पहले भी जब नरेन्द्र मोदी सरकार सत्ता में नहीं थी तब भी आपने देखा होगा कि मोटरसाइकिलों, कारों के आगे -पीछे गुर्जर, जाट, क्षत्रिय, ब्राह्मण, ठाकुर, चौहान, यादव, पण्डित, चमार, गड़रिया आदि का स्टीकर चिपकाने का चलन जारी था। ऐसा ज़्यादातर वही लोग करते हैं जो जाति-धर्म व सम्प्रदायों में गर्व महसूस करते हैं या दूसरों से महसूस करवाना चाहते हैं। महाराष्ट्र में यदि आप जाएँ तो देखेंगे मुख्य रूप से दो समुदाय विशेष के स्टीकर मुख्य तौर पर दिखाई देंगे। एक दलितों का जय भीम का नाम व तस्वीर वाले स्टीकर दूसरा मराठा लोगों का मराठा लिखा स्टीकर या छत्रपति शिवाजी महाराज की तस्वीर वाले स्टीकर, जिन्हें हिन्दू हृदय सम्राट कहा जाता है। कुछ सात-आठ महीनों के दौरान एक नया स्टीकर का ट्रेण्ड उभर कर सामने आया है। इस स्टीकर का नाम है 'हिन्दू' और उसके साथ भगवा झण्डा! इस स्टीकर का चलन पिछले सात-आठ महीनों में इतना तेज़ी से बढ़ा है जो अपने आप में अभूतपूर्व है। एक न्यूज़ वेबसाइट न्यूज़ लाण्ड्री की रिपोर्ट के अनुसार दिल्ली के बहुत से स्टीकर बेचने वाले दुकानदारों ने बताया कि एक महीने में इस स्टीकर 'हिन्दू' की बिक्री लगभग 20 हज़ार से 25 हज़ार आराम से हो जाती है। अब आप सोच सकते हैं कि जब एक अकेले दिल्ली शहर का यह हाल है तो पूरे देश भर में रोज़ इस प्रकार के कितने स्टीकर बिक रहे होंगे। लेकिन यह सब अचानक से नहीं हुआ है। यह साम्प्रदायिक फ़ासीवादी मोदी सरकार व संघ परिवार द्वारा किए जा रहे हिन्दुत्ववादी राजनीति के प्रयोग का एक हिस्सा है। संघ परिवार व फ़ासीवादी मोदी सरकार एवं इनके दरबारी मीडिया द्वारा इसे बढ़ावा दिया जा रहा है। ताकि आने वाले 2024 के लोकसभा चुनावों में तथाकथित "हिन्दू गौरव" को स्थापित करने का झाँसा देकर फ़िर से मोदी सरकार को सत्ता में लाया जा सके।

जाति-धर्म सम्प्रदायसूचक स्टीकरों को लगाकर हमें गर्व महसूस करना दूसरों से गर्व महसूस करवाना या दूसरों से श्रेष्ठ बनना या दूसरों को नीचा दिखाना बन्द करना होगा और संघ परिवार व फ़ासीवादी मोदी सरकार की इस राजनीति को समझना होगा। सभी फासिस्ट मज़दूर वर्ग की 'क्रान्तिकारी वर्गीय एकजुटता' से डरते हैं। इसके लिए हमें जाति-धर्म में बाँटकर रखना चाहते हैं ताकि हमारी क्रान्तिकारी जुझारू जन एकजुटता को तोड़ा जा सके। मज़दूर वर्ग को संघ परिवार व फ़ासीवादी मोदी सरकार की इस कुटिल चाल को समझकर इसका भन्डाफोड़ करना होगा। हमें अपनी मुख्य माँगों शिक्षा, चिकित्सा, आवास, रोजगार के लिए व्यापक मज़दूर वर्ग की एकजुटता स्थापित करनी होगी और इस फ़ासीवादी मोदी सरकार व संघ परिवार के खिलाफ अनथक संघर्ष चलाना होगा। तभी इनसे जीता जा सकता है और इनकी विचारधारा व राजनीति को परास्त किया जा सकता है।

– राजू कुमार
सिडकुल इंडस्ट्रियल एरिया,
हरिद्वार

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" **– लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल के सभी पाठकों के सूचनार्थ

मज़दूर बिगुल के फ़ेसबुक पेज (facebook.com/mazdoorbigul) को किसी विदेशी हैकर ने हैक कर लिया है और उस पर कुछ फ़ालतू पोस्ट करना भी शुरू कर दिया है। फ़ेसबुक को सभी साक्ष्यों सहित कई बार लिखने के बावजूद उस पर कोई कार्रवाई नहीं की गयी है। अन्ततः हमने मज़दूर बिगुल का नया फ़ेसबुक पेज बनाया है - facebook.com/mazdoorbigul1 (अन्त में '1' जोड़ा गया है)। आपसे आग्रह है कि पुराने पेज से आने वाली पोस्ट पर ध्यान न दें और हमारे नये पेज को फ़ॉलो कर लें।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul1

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

फ़िलिस्तीन के समर्थन में और हत्यारे इज़रायली ज़ायनवादियों के ख़िलाफ़ देशभर में विरोध प्रदर्शनों को कुचलने में लगी फ़ासीवादी मोदी सरकार

● भारत

बीते 7 अक्टूबर की सुबह हमास के नेतृत्व में फ़िलिस्तीनी प्रतिरोध योद्धाओं द्वारा इज़रायल पर एक अभूतपूर्व हमला किया गया। निश्चय ही, सर्वहारा वर्ग के नज़रिये से हमास की विचारधारा का कतई समर्थन नहीं किया जा सकता है। लेकिन यह हमला एक प्रकार से जेल तोड़ने जैसा था। गाज़ा को पिछले डेढ़ दशक से भी ज़्यादा समय से इज़रायल ने अपने हत्यारे ब्लॉकेड से एक जेल में तब्दील कर रखा है। कौमी दमन के शिकार फ़िलिस्तीन की जनता ने कभी हार नहीं मानी। गाज़ा उसके प्रतिरोध का प्रतीक बन चुका है। ऐसी स्थितियों में, जनता को उसके प्रतिरोध में जो नेतृत्व देने आगे आता है, वह उसके साथ चलती है, भले ही वह उससे विचारधारात्मक व राजनीतिक तौर पर अन्तर रखती हो। 7 अक्टूबर को गाज़ा की जनता ने जेल तोड़ी और औपनिवेशिक कब्ज़ा करने वाली ताक़त ज़ायनवादी इज़रायल पर हमला किया।

उसके बाद से इज़रायल द्वारा जारी नरसंहार में अब तक क़रीब 10,000 से अधिक फ़िलिस्तीनी मारे जा चुके हैं। ज़ाहिर है कि दुनिया भर के साम्राज्यवादी देशों ने विशेषकर पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों ने और पश्चिमी मीडिया ने इज़रायल पर हमले को "आतंकी हमला" बताकर उसकी निन्दा की है और इज़रायल के साथ एकजुटता ज़ाहिर की है। साथ ही, दुनिया भर के धुर दक्षिणपन्थी व फ़ासीवादी सत्ताधारियों ने भी इज़रायल के ज़ायनवादी उपनिवेशवाद के साथ एकजुटता जतायी है, मसलन, भारत के प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने। भारत का ऐसा स्टैण्ड भाजपा के सत्ता में आने के साथ ही हुआ है क्योंकि ज़ायनवादी नस्लवादियों की भारत के साम्प्रदायिक फ़ासीवादियों के साथ नैसर्गिक एकता बनती ही है।

वहीं इसके बरक्स पूरी दुनिया में फ़िलिस्तीन के समर्थन में प्रदर्शन हो रहे हैं। अमेरिका, लंदन, जर्मनी से लेकर इण्डोनेशिया, फ्रांस और अन्य देशों की जनता फ़िलिस्तीन के समर्थन में उतर गयी है। लाखों-लाख लोग इन प्रदर्शनों में देखे जा सकते हैं। भारत में भी **भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी**, दिशा छात्र संगठन, नौजवान भारत सभा, स्त्री मुक्ति लीग और अन्य संगठनों द्वारा फ़िलिस्तीन के समर्थन में और इज़रायल द्वारा किये जा रहे क़त्लेआम के खिलाफ़ देश भर में प्रदर्शन आयोजित किये गये। इसके तहत 13 अक्टूबर को देशव्यापी प्रदर्शन का आह्वान किया गया था।

ये प्रदर्शन दिल्ली, मुम्बई, पुणे, हैदराबाद, बनारस, विज़ाग, इलाहाबाद, पटना, चण्डीगढ़, हरियाणा में प्रदर्शन किये गये। 13 अक्टूबर को हुए इस देशव्यापी प्रदर्शन को रोकने के लिए मोदी सरकार ने एड़ी-चोटी तक का ज़ोर लगाया। प्रदर्शन से पहले ही भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी और अन्य संगठनों के कार्यकर्ताओं को हाउस अरेस्ट से लेकर डिटेन किया गया।

दिल्ली में शिवानी कौल, इलाहाबाद में प्रसेन और मुम्बई में अक्षय, बबन और धनंजय इन सभी साथियो को प्रदर्शन से ठीक पहले पुलिस द्वारा डिटेन या हाउस अरेस्ट कर लिया गया। इसके बावजूद निर्धारित जगहों पर प्रदर्शन किये गये। पर पुलिस ने इन प्रदर्शनों को भी तुरन्त समाप्त करवाने की कोशिश की और सभी लोगो के साथ मारपीट की गयी और उन्हें डिटेन कर लिया गया। दिल्ली, हैदराबाद, मुम्बई, बनारस, इलाहाबाद में प्रदर्शन स्थल से सभी लोगो को डिटेन कर लिया गया। 13 अक्टूबर को ही मुम्बई में आयोजित प्रदर्शन में साथी रुचिर और सुप्रीत को पुलिस द्वारा निर्मम तरीके से मारा-पीटा गया। इस दौरान रुचिर के सर पर गम्भीर चोटें आयी। इसके बाद दोनो साथियों को गिरफ़्तार कर लिया गया और 332 व 353 धारा लगायी गयी। पुलिस द्वारा पीटे जाने के सबूत होने के बावजूद दोनों साथियो को कोर्ट के आदेश पर हफ़्ते भर तक

(पेज 4 पर जारी)

देशभर में फ़िलिस्तीन-समर्थक विरोध प्रदर्शनों को कुचल रही मोदी सरकार

(पेज 3 से आगे)

जेल में रखा गया। वहीं दिल्ली में दिशा छात्र संगठन की उपाध्यक्ष प्रियम्बदा, नौरीन, नौजवान भारत सभा के अध्यक्ष आशीष, तुषार, रिहान, शीर्षवो और अन्य साथियो को डिटेन कर मन्दिर मार्ग थाने में रखा गया। उत्तर प्रदेश में दिशा छात्र संगठन के अध्यक्ष अविनाश, अम्बरीश, धर्मराज और आकाश को भी डिटेन किया गया और एक दिन बाद छोड़ा गया। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में भी साथी अमित को प्रदर्शन के दौरान डिटेन किया गया। तेलंगाना में भार्गवी, हीना, सृजा, महिपाल, अनिता और आनन्द को डिटेन किया गया।

इसके बाद 9 नवम्बर को दिल्ली के इज़रायल दूतावास पर **भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी** द्वारा दोबारा प्रदर्शन का आयोजन किया गया। इस प्रदर्शन में इज़रायल के झण्डे जलाये गये और नेतन्याहू-बाइडेन का पुतला फूँका गया। यहाँ भी पुलिस ने सभी प्रदर्शनकारियों को डिटेन कर लिया और प्रदर्शन में मौजूद लोगो के साथ मारपीट की। मोदी सरकार का यह दमनकारी रवैया दर्शाता है कि ज़ायनवादियों और फ़ासीवादियों की कितनी प्रगाढ़ एकता है।

साथ ही यह बताते चले कि भारत इज़रायल के हथियारों का सबसे बड़ा ख़रीदार है। वहीं दोनो के खुफिया तन्त्र में भी काफ़ी समानता है। ज्ञात हो कि जासूसी उपकरण पेगासस भारत को देने वाला देश इज़रायल ही है। यह भी एक कारण है कि मोदी सरकार देश भर में जारी इज़रायल के प्रतिरोध से घबरायी हुई है, कि कहीं इससे उनके ज़ायनवादी दोस्त नाराज़ न हो जायें। वहीं फ़िलिस्तीन मसले पर इन्दिरा गाँधी के दौर तक भारत ने कम-से-कम औपचारिक तौर पर फ़िलिस्तीनी मुक्ति के लक्ष्य का समर्थन किया था और इज़रायल द्वारा फ़िलिस्तीनी ज़मीन पर औपनिवेशिक क़ब्ज़े को ग़लत माना था। 1970 के दशक से प्रमुख अरब देशों का फ़िलिस्तीन के मसले पर पश्चिमी साम्राज्यवाद के साथ समझौतापरस्त रुख़ अपनाने के साथ भारतीय शासक वर्ग का रवैया भी इस मसले पर ढीला होता गया और वह "शान्ति" की अपीलों और 'दो राज्यों के समाधान' की अपीलोंमें ज़्यादा तब्दील होने लगा। अभी भी औपचारिक तौर पर तो भारत फ़िलिस्तीन का समर्थन करता है, पर वह सिर्फ़ नाम के लिए ही है।

दुनिया के कुछ अन्य प्रतिक्रियावादी शासनों के विपरीत, भारत में अभी भी ज़ायनवादी इज़रायल के ख़िलाफ़ विरोध प्रदर्शन और बहिष्कार-विनिवेश-प्रतिबन्ध (बीडीएस, दुनिया भर में इज़रायल का आर्थिक बहिष्कार के लिए चलाया जा रहा आन्दोलन) आन्दोलन को प्रतिबन्धित करने के लिए कोई क़ानून नहीं है। इसके बावजूद फ़ासीवादी मोदी सरकार द्वारा सारी संवैधानिकता और वैधानिकता को ताक़ पर रखकर फ़िलिस्तीन के समर्थन में हो रहे प्रदर्शनों को कुचला गया। **इससे यह सवाल उठता है कि जब भारत में फ़िलिस्तीन समर्थक प्रदर्शनों या बीडीएस अभियानों पर रोक लगाने वाला कोई क़ानून नहीं है, तो मोदी सरकार किस आधार पर इन कार्रवाइयों को अंजाम दे रही है?** वास्तव में देशभर में ऐसे किसी भी विरोध प्रदर्शन को रोकने के लिए सीधे गृह मन्त्रालय द्वारा आदेश जारी किए जा रहे है। इसलिए मोदी सरकार अपने ज़ायनवादी इज़रायली दोस्तों के ख़िलाफ़ विरोध की आवाज़ों को दबाने के लिए हर तरह के दमनकारी उपायों का सहारा ले रही है।

दुनिया भर के उत्पीड़क और शासक हमेशा से यह सोचते रहे हैं कि वे असहमति की आवाज़ को दबा सकते हैं और उसका दमन कर सकते हैं। लेकिन सच तो यह है कि दमन से ही प्रतिरोध पैदा होता है। दुनिया भर में, करोड़ों लोग ज़ायनवादी इज़रायल द्वारा फ़िलिस्तीन पर क़ब्ज़े के ख़िलाफ़, अपने शासक वर्गों के ख़िलाफ़ और अधिक मज़बूती से उठ रहे हैं और फ़िलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष के साथ एकजुटता से खड़े हो रहे हैं। आने वाले दिनों में भी लड़ाई निश्चित रूप से और अधिक तेज़ी से जारी रहेगी क्योंकि न्याय नहीं है तो शान्ति कैसे हो सकती है!

बढ़ती बेरोज़गारी के ताज़ा आँकड़े और उसकी वजह

(पेज 1 से आगे)

हैं। बेरोज़गारी दर को परिभाषित ऐसे किया जाता है कि वे सभी लोग जिनके पास काम नहीं है और वे काम ढूँढ रहे हैं, उनकी संख्या, तथा कुल श्रमशक्ति की कुल संख्या का अनुपात।

अक्टूबर 2023 के लिए सीएमआईई के आँकड़े बेरोज़गारी की एक भयावह तस्वीर पेश करते हैं। इतनी ख़राब परिभाषा के आधार पर भी अक्टूबर 2023 में भारत में बेरोज़गारी दर 10.05 प्रतिशत थी। इसमें ग्रामीण बेरोज़गारी दर 10.82 प्रतिशत थी, जबकि शहरी बेरोज़गारी दर 8.44 प्रतिशत थी। ज़ाहिर है, अगर बेरोज़गारी की परिभाषा में पक्की नौकरी के सवाल को जोड़ा जाये तो यह संख्या 40 प्रतिशत के पार जा सकती है। लेकिन अभी हम इसी परिभाषा को लेकर चलें तो भी भारत की करीब 53 करोड़ श्रमशक्ति (काम करने योग्य जनसंख्या) में से करीब 5.4 करोड़ के पास किसी प्रकार का रोज़गार नहीं है, न दिहाड़ी, न ठेके वाला, न कोई अपना छोटा-मोटा धन्धा...यानी कुछ भी नहीं! ज़ाहिर है, इसमें अनौपचारिक क्षेत्र के दिहाड़ी, ठेका व कैजुअल मज़दूरों की एक बड़ी संख्या को जोड़ दें, जिनके पास कोई रोज़गार सुरक्षा नहीं है, तो यह आँकड़ा 30 करोड़ के ऊपर चला जायेगा। लेकिन बेहद कमज़ोर परिभाषा के आधार पर भी देखें, तो बेरोज़गारी दर भयंकर है।

यह मई 2021 के बाद की उच्चतम बेरोज़गारी दर है, जब कोविड व मोदी सरकार द्वारा थोपे गये अनियोजित लॉकडाउन के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था धराशायी हो गयी थी। तब से सकल घरेलू उत्पाद में धीमी गति से कुछ रिकवरी हुई है (हालाँकि मोदी सरकार यह झूठा दावा करती रहती है कि भारतीय अर्थव्यवस्था दुनिया के सबसे तेज़ बढ़ती अर्थव्यवस्था है) लेकिन बेरोज़गारी की दर पहले से भयंकर हुई है। पिछले साल इसी महीने इसी स्रोत यानी सीएमआईई के आँकड़ों के अनुसार बेरोज़गारी दर 7.09 प्रतिशत थी। लेकिन आज यह 10.05 प्रतिशत पर पहुँच गयी है। बेरोज़गारी में बढ़ोत्तरी का प्रमुख कारण यह है कि भारत की कार्यशक्ति (जो किसी न किसी प्रकार का काम कर रही है) लगभग 40 करोड़ के आस-पास ठहरावग्रस्त है। श्रमशक्ति (यानी काम करने योग्य आबादी) में बढ़ोत्तरी हुई, जो कि स्वाभाविक है। लेकिन अर्थव्यवस्था में रोज़गार पैदा नहीं हो रहे हैं और जो हैं वे भी अधिक से अधिक असुरक्षित होते जा रहे हैं।

दूसरी तरफ, धीमी गति से ही सही लेकिन 2019 के मुकाबले सकल घरेलू उत्पाद में 16 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। इतना भी इसलिए दिख रहा है क्योंकि मोदी सरकार की नोटबन्दी और जीएसटी के कारण सकल घरेलू उत्पाद इतना नीचे चला गया था कि थोड़ी-बहुत रिकवरी होने पर भी वह प्रतिशत में ज़्यादा ही नज़र आयेगा। मोदी सरकार की यह पुरानी चाल रही है कि पहले जनता के हालात बेहद नीचे गिरा दो और फिर कुछ ऊपर लाकर उसका श्रेय बटोरो। ठीक उसी प्रकार जैसे गैस सिलेण्डर को पहले रु. 500 से बढ़ाकर रु. 1200 पर पहुँचा दो और फिर रु. 200 या 300 कम करके जनता पर अहसान जताओ। सकल घरेलू उत्पाद के मामले में भी ऐसा ही हुआ है। नोटबन्दी और जीएसटी ने उसे लगभग शून्य में पर ला दिया था। उसके बाद कुछ भी बेहतरी होगी तो वह प्रतिशत में तो ज़्यादा ही दिखायी देगी।

बहरहाल, अगर 2019 के मुकाबले सकल घरेलू उत्पाद 16 प्रतिशत बढ़ा है, देश की अर्थव्यवस्था में कुछ वृद्धि हुई है, तो यह रोज़गार में भी नज़र आनी चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। क्यों? क्योंकि जो वृद्धि हुई है, वह रोज़गार-विहीन विकास के चलते हुई है। मज़दूरों के कार्यदिवस की लम्बाई और सघनता को बढ़ाकर पूँजीपति वर्ग अपने मुनाफ़े को बढ़ा रहा है। लेकिन इसके कारण यदि अर्थव्यवस्था में नये पैमाने पर निवेश नहीं हो रहा, यदि पर्याप्त रूप में विस्तारित पुनरुत्पादन नहीं हो रहा है, तो ज़ाहिरा तौर पर बेरोज़गारों की रिज़र्व आर्मी में बढ़ोत्तरी होगी।

सवाल यह है कि मोदी सरकार जब पूँजीपतियों को ब्याज़मुक्त ऋण से लेकर, लगभग फ्री बिजली, पानी व ज़मीन और प्रत्यक्ष करों से भारी छूट दे रही है, ताकि वे नये निवेश करें, तो फिर भारत के पूँजीपति पर्याप्त मात्रा में नये निवेश क्यों नहीं कर रहे हैं? वे नये निवेश इसलिए नहीं कर रहे हैं, क्योंकि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की मुनाफ़े की औसत दर बेहद कम है। दूसरे शब्दों में मन्दी अभी भी जारी है। नतीजतन, सरकार से जो छूट और सौगातें पूँजीपतियों को मिल रही हैं, वे उसे उत्पादक कार्रवाइयों में कम और सट्टेबाज़ी आदि में ज़्यादा लगा रहे हैं। नतीजतन, रोज़गार सृजन नहीं हो रहा है। साथ ही, मज़दूरों के शोषण की दर को बढ़ाने, श्रम की सघनता को बढ़ाने और ठेका प्रथा द्वारा कार्यदिवस की लम्बाई को बढ़ाने के कारण भी रोज़गार सृजन की दर घटती जा रही है। यही वजह है कि सकल घरेलू उत्पाद में तो मामूली गति से वृद्धि दिखायी दे रही है (2019 से हर वर्ष औसतन 5 से 6 प्रतिशत के बीच) लेकिन वह रोज़गार सृजन में प्रतिबिम्बित नहीं हो रही है।

यह पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का मुनाफे की गिरती औसत दर का संकट है, जिसे हमारे देश में आर्थिक कुप्रबन्धन और पूँजीपतियों के साथ मिलकर मोदी सरकार द्वारा किये जा रहे भ्रष्टाचार ने और भी ज़्यादा विकराल रूप दे दिया है। गोदी मीडिया बेरोज़गारी की इस स्थिति के बारे में मज़दूरों-मेहनतकशों को कभी सच्चाई नहीं बतायेगा। लेकिन जैसे ही आप ठोस आँकड़ों पर निगाह डालते हैं और उनका वैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं, वैसे ही फ़ासीवादी मोदी सरकार की मज़दूर-विरोधी नीतियों की सच्चाई आपके सामने आ जाती है। इन सच्चाइयों को समझिये। सब याद रखिये। और हर मौके पर भाजपा और मोदी सरकार को अपने संघर्षों के बूते सबक सिखाइये। फ़ासीवादी मोदी सरकार और संघ परिवार ही भारत में मज़दूरों, मेहनतकशों और निम्न-मध्यवर्ग के सबसे बड़े दुश्मन हैं।

मालिकों की मुनाफ़े की हवस ले रही मज़दूरों की जान!

● भारत

बीते अक्टूबर में देश के अलग-अलग इलाकों में आग लगने की कई घटनाएँ हुई। चाहे दिल्ली का बवाना औद्योगिक क्षेत्र हो या गुजरात या उत्तराखण्ड या पंजाब। देश के मुख्यत: सभी प्रमुख राज्यों में कारखानों में आग की चपेट में आने से मज़दूर घायल हुए या मौत ने उन्हें लील लिया।

सबसे अधिक आग लगने की घटनाएँ दिल्ली के बवाना औद्योगिक क्षेत्र में सामने आयी। सितम्बर के अन्त में बवाना के सेक्टर-3 के ओ-58 के लाइटर की फैक्ट्री में ज़ोरदार धमाका हुआ। इसमें क़रीब 4 मज़दूरों की मौके पर ही मौत हो गयी और 4 मज़दूर बुरी तरह घायल हुए। धमाका इतना ज़ोरदार था कि समाने वाली फैक्ट्री तक के शीशे टूट गये। फैक्ट्री में हज़ारों की संख्या में लाइटर मौजूद थे, जिसे बिना किसी सुरक्षा के तोड़ कर दाने में तब्दील करने के लिए इस्तेमाल किया जाता था, लाइटर का गैस लीक होने के कारण ही धमाका हुआ। फैक्टरी में 8 मज़दूर काम करते थे। मौके पर मौजूद लोगों ने बताया कि जब धमाका हुआ था, ऐसा लगा कहीं बम फटा हो। बाहर आकर देखा तो मज़दूर लाइटर के बीच में बिखरे हुए पड़े थे। इसके बाद बवाना के सेक्टर-5 में बीते दो हफ़्तों में चार कारखानों में आग लगी। समय रहते मज़दूर फैक्ट्रियों से निकल गये, अन्यथा यह भी बड़ी घटना बन जाती।

12 अक्टूबर को दिल्ली के ही पीरागढ़ी उद्योग नगर औद्योगिक क्षेत्र के कारखाने में आग लगी। आग की भयावहता का अन्दाज़ा इसी से लगाया जा सकता था कि आग को बुझाने के लिए करीब 33 अग्निशमन गाड़ियों को मशक्कत करनी पड़ी।

25 अक्टूबर को गुजरात के अरावली जिले में एक केमिकल फैक्ट्री में भीषण आग लग गयी। इस आग में केमिकल से भरे 60 से ज़्यादा टैंकर जलकर खाक हो गये।

17 अक्टूबर को रुड़की में रायपुर के पास बल्ब बनाने वाली एक फैक्टरी परिसर में बने दो गोदामों में भीषण आग लग गई। फायर ब्रिगेड की 13 टीमों ने 14 घण्टे के बाद आग पर काबू पाया।

कर्नाटक के अनेकल तालुक में 7 अक्टूबर को एक पटाखे के गोदाम में ब्लास्ट होने से 14 मज़दूरों की मौत हो गयी, जबकि घटना में कई लोग गम्भीर रूप से घायल हुए। बेंगलुरु के पास स्थित इस गोदाम में जान गँवाने वाले 14 लोगों में ज़्यादातर ग़रीब छात्र थे, जो अपनी पढ़ाई का खर्च जुटाने के लिए छुट्टियों के दौरान वहाँ काम करते थे। आधिकारिक सूत्रों ने बताया कि मृतकों में छह 12वीं कक्षा और ग्रेजुएशन के विद्यार्थी थे।

6 अक्टूबर को अमृतसर के मजीठा रोड स्थित नागकलाँ दवा फैक्टरी क्वालिटी फार्मास्यूटिक्ल लिमिटेड में आग लगी। आग लगने से फैक्टरी में पड़े 500 के क़रीब केमिकल ड्रम एक के बाद एक धमाके के साथ फट गये। प्रशासन ने चार मज़दूरों की मौत की पुष्टि की, जबकि दो लोग गम्भीर रूप से झुलस गये। जानकारी के अनुसार फैक्टरी में क़रीब 1600 मज़दूर काम करते थे।

यह सब महज़ दुर्घटनाएँ नहीं मालिकों व इस पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा की जाने वाली निर्मम हत्याएँ हैं। आये-दिन कीड़े-मकौड़ों की तरह कारख़ानों में मज़दूरों को मरने के लिए पूँजीपति मज़बूर करते हैं। श्रम मन्त्रालय की एक रिपोर्ट बताती है कि बीते पाँच वर्षों में 6500 मज़दूर फैक्ट्री, खदानों, निर्माण कार्य में हुए हादसों में अपनी जान गवाँ चुके हैं। इसमें से 80 प्रतिशत हादसे कारखानों में हुए। 2017-2018 कारखाने में होने वाली मौतों में 20 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। साल 2017 और 2020 के बीच, भारत के पंजीकृत कारखानों में दुर्घटनाओं के कारण हर दिन औसतन तीन मज़दूरों की मौत हुई और 11 घायल हुए। 2018 और 2020 के बीच कम से कम 3,331 मौतें दर्ज़ की गयी। आँकड़ों के मुताबिक, फैक्ट्री अधिनियम, 1948 की धारा 92 (अपराधों के लिए सामान्य दण्ड) और 96ए (ख़तरनाक प्रक्रिया से सम्बन्धित प्रावधानों के उल्लंघन के लिए दण्ड) के तहत 14,710 लोगों को दोषी ठहराया गया, लेकिन आँकड़ों से पता चलता है कि 2018 और 2020 के बीच सिर्फ़ 14 लोगों को फैक्ट्री अधिनियम, 1948 के तहत अपराधों के लिए सज़ा दी गयी। यह आँकड़े सिर्फ़ पंजीकृत फैक्ट्रियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि दिल्ली और पूरे देश में लगभग 90 फ़ीसदी श्रमिक अनौपचारिक क्षेत्र से जुड़े हैं और अनौपचारिक क्षेत्र में होने वाले हादसों के बारे में कोई पुख़्ता आँकड़े नहीं हैं।

वहीं पंजीकृत कारख़ानों के उपलब्ध DGFASLI डेटा के अनुसार, 2020 में भारत में 363,442 पंजीकृत कारख़ाने थे, जिनमें से 84 फीसदी चालू अवस्था में थे और उनमें तक़रीबन 2 करोड़ कर्मचारी काम कर रहे थे। डीजीएफएएसएलआई के आँकड़े बताते हैं कि 2020 तक पहले के चार सालों में हर साल पंजीकृत कारखानों में औसतन 1,109 मज़दूरों की मौतें हुईं और 4,000 से ज़्यादा लोगों को चोटें आईं। अगर दिल्ली की बात करें तो दिल्ली के श्रम विभाग से एक आरटीआई ज़वाब में प्राप्त आँकड़ों के आधार पर पता चलता है कि दिल्ली में अक्टूबर 2022 तक 13,464 पंजीकृत कारखाने थे। इसमें 2018 और 2022 के बीच 118 मौतें हुई। वही देश में कारखानों में सबसे अधिक मौतें गुजरात में हुई है। चार साल के दौरान फैक्टरी में होने वाली पाँच में से एक से ज़्यादा मौतें और घायल होने की घटनाएँ गुजरात में हुई हैं। डीजीएफएएसएलआई के आँकड़ों के अनुसार, 2019 में गुजरात में कारखानों में सबसे अधिक 79 मज़दूरों की मौत हुई और 192 मज़दूर घायल हुए। इसी गुजरात मॉडल को भाजपा और मोदी देश भर में लागू करने की बात करते हैं, जो मज़दूरों के लिए क़ब्रगाह है। गुजरात ही वह राज्य है जहाँ सबसे पहले श्रम क़ानूनों को ख़त्म किया गया था। याद कीजिए इसी गुजरात मॉडल का झुनझुना मोदी और भाजपा 2014 में सबको पकड़ा रहे थे।

आख़िर क्यों दिल्ली से लेकर देश के कारख़ानों में आग लगातार आग लगती रहती है और मज़दूर मरते रहते हैं? क्यों इसपर कोई कार्रवाई नहीं होती? ज़वाब साफ़ है! मज़दूरों की मौत के ज़िम्मेदार कोई और नहीं बल्कि फैक्टरी मालिक और उनके चन्दे से चलने वाली पूँजीवादी पार्टियों की सरकारें हैं। आज दिल्ली से लेकर पूरे देश के कारख़ानों में सुरक्षा के कोई इन्तज़ाम नहीं हैं। मालिकों द्वारा हर रोज़ अपने मुनाफ़े की हवस को पूरा करने के लिए मज़दूरों की जान को जोख़िम में डाला जाता है। सस्ते श्रम के तौर पर महिलाओं को काम पर लगाया जाता है और निर्मम परिस्थितियों में काम करा कर मालिक अपना मुनाफ़ा पीटते हैं। इन्हीं मालिकों, पूँजीपतियों के पैसे से तमाम चुनावबाज़ पार्टियाँ चुनाव लड़ती हैं। वे ही इस हत्या, लूट और शोषण को क़ानूनी जामा पहनाते हैं, जिसकी वज़ह से ये घटनाएँ आम होती जा रहीं हैं। इन मौतों पर मगरमच्छ के आँसू बहाने वाली तमाम पार्टियों के हुक्मरान ही असल में इन घटनाओं को प्रश्रय देते हैं। उनके लिए मज़दूरों की मौत महज़ एक संख्या है। सभी पार्टियों के बहुत से मन्त्री स्वयं कारखाना-मालिक हैं और किसी श्रम क़ानून को लागू नहीं करते, मज़दूरों को कोई सुरक्षा उपकरण नहीं देते हैं। सवाल तो यह भी बनता है कि जी-20 के नाम पर "अवैध झुग्गियों" को तोड़ दिया जाता है, ग़रीबों रोजी-रोटी उजाड़ दी जाती है, वहीं तमाम अवैध कारखानों से लेकर फैक्ट्रियों में सुरक्षा इन्तज़ामों की कमी पर सब चुप्पी साधे रहते हैं! ऐसा क्यों? क्योंकि इनमें से तमाम फैक्ट्री कारखानों के मालिक भाजपा या अन्य किसी पार्टी के नेता या उसके समर्थक ही है। इन्ही पार्टियों के ज़्यादातर नेता-मन्त्री ख़ुद ही कारखाने चलवाते हैं, उन्हें लाइसेंस दिलवाते हैं। देश के 28 करोड़ मज़दूर कारखानों में रोज़ जान हथेली पर रखकर इन मालिकों इनकी तिजोरियाँ भरते हैं।

अगर दिल्ली की बात करें तो दिल्ली में बसे 29 औद्योगिक क्षेत्रों के हालात यह हैं कि किसी भी कारखाने में सुरक्षा के नियम-क़ानून लागू नहीं होते। ऊपर से केजरीवाल नौटंकी करता है कि उसने मज़दूरों की ज़िन्दगी बदल दी और उनका वेतन बढ़ा दिया। काग़ज़ों में वेतन बढ़ोत्तरी की घोषणा के बाद अब 8 घण्टे के कार्य दिवस के हिसाब से कुशल श्रमिकों के लिए न्यूनतम मासिक वेतन 20,903 रुपये से बढ़ाकर 21,215 रुपये किया गया है। अर्द्धकुशल श्रमिकों के लिए इसे 18,993 से 19,279 और गैर-कुशल श्रमिकों के लिए 17,234 से 17,494 रुपये किया गया है। पर असलियत तो हम सब जानते हैं कि दिल्ली में काम कर रहे डेढ़ करोड़ से ज़्यादा मज़दूरों पर इससे रत्ती भर भी फ़र्क़ नहीं पड़ेगा क्योंकि पूरी दिल्ली के औद्योगिक क्षेत्रों में श्रम क़ानून लागू ही नहीं होते। दिल्ली के अन्दर एक बड़ी आबादी घरेलू कामगारों की है, जिनके लिए न्यूनतम वेतन एक खोखले शब्द के अलावा कुछ है ही नहीं। एक तरफ़ मज़दूरों से लेकर कामगारों की बड़ी आबादी रोज़ 200 रुपये में अपना हाड़-माँस गलाती है और बदतर हालात में जीने को मज़बूर है, वहीं दूसरी तरफ़ केजरीवाल मज़दूरों का 'मसीहा' बनने की नौटंकी कर रहा है। जब श्रम क़ानून लागू करवाने की बात आती है तो, उनके श्रम मन्त्री बड़े बेशर्मी से बोल देते है कि पूरी दिल्ली में सिर्फ़ चौंसठ औद्योगिक इकाई में श्रम क़ानून लागू नहीं हो रहा। मालिकों के ख़िलाफ़ कभी इनका मुँह नहीं खुलता, क्योंकि इन्ही मालिकों के हितों की रक्षा करने के लिए तो ये "आम आदमी" मुख्यमन्त्री बना है।

अगर दिल्ली के बवाना औद्योगिक क्षेत्र की बात करें तो, यहाँ दाना लाइन के सबसे अधिक कारखाने हैं और यहाँ काम करते वक़्त जान जाने का ख़तरा सबसे अधिक होता है। आये-दिन यहाँ आग लगने से लेकर, दाने की मशीन में हाथ कटने की ख़बरें आती रहती हैं। यहाँ मालिकों द्वारा श्रम क़ानून लागू करना तो दूर की बात है, मज़दूरों को 6000-7000 हज़ार के लिए रोज़ जान जोख़िम में डाल कर काम करना पड़ता है। किसी भी फैक्ट्री के सुरक्षा के उपकरण तक मौजूद नहीं होते।

आप जानते होंगे कि पहले फैक्ट्री इन्स्पेक्टर फैक्ट्रियों में जाँच के लिए कभी-कभी आ जाते थे।इससे सब वाकिफ़ हैं कि वे सीधा मालिकों के केबिन में जाकर अपनी जेब गरम करके निकल जाते थे। इसके बावजूद मज़दूर अपनी शिकायत दर्ज़ करा सकता था। पर मोदी सरकार द्वारा लाये जा रहे चार लेबर कोड आने के बाद से फैक्ट्री इन्स्पेक्टर का पद ही समाप्त कर दिया जायेगा। वैसे इसकी शुरुआत काफ़ी पहले ही हो चुकी थे। आँकड़ें बताते हैं कि 2020 में फैक्टरी इन्स्पेक्टर के लिए स्वीकृत 1,040 पदों में से सिर्फ 69% पदों पर भर्ती की गयी थी। यानी 412 कार्यरत कारखानों के लिए एक फैक्ट्री इन्स्पेक्टर। गुजरात में 453 कार्यरत कारखानों के लिए एक निरीक्षक है, जबकि दिल्ली में 973 कारखानों के लिए एक निरीक्षक है। इससे ही समझा जा सकता है कि सरकारों को मज़दूरों की कितनी "चिन्ता" है। वहीं फ़ासीवादी मोदी सरकार जो काग़ज़ों पर श्रम क़ानून बचे हैं, उन्हें भी ख़त्म करने की योजना को अमली जामा पहना चुकी है। चार लेबर कोड लागू होने के बाद मालिकों द्वारा मज़दूरों को लूटने में कोई बाधा नही आयेगी। काम से निकालना आसान हो जायेगा, यूनियन बनाना और मुश्किल हो जायेगा, ओवरटाइम के घण्टे बढ़ा दिये जायेंगे, महिलाएँ और बच्चों से भी रात की शिफ्ट में काम करवाया जा सकेगा और मालिकों को सबसे बड़ा यह फ़ायदा होगा कि इतना सब वह मज़दूर के साथ कर सकता है, पर मज़दूर इन सब के ख़िलाफ़ एक केस तक नही कर पायेगा।

अगर आज ही हमने आज से ही इस मुनाफ़े के मकड़जाल से निकलने के लिए पुरज़ोर आवाज़ नही उठायी, अपने इलाक़े व सेक्टर के आधार पर यूनियन और संगठन नहीं बनाए, तो अगली बारी हमारी होगी। ऐसे में वह दिन दूर नही जब यही मालिक अपने मुनाफ़े के लिए मज़दूरों को क़ानूनन आग की भट्टी में झोंक देंगे और सरकार खुल कर मालिकों का साथ देगी। इसलिए हालात बदलने का एकमात्र हथियार हमारी एकजुटता ही है।

बढ़ते प्रदूषण की दोहरी मार झेलती मेहनतकश जनता

● अदिति

हर साल की तरह इस बार भी ठण्ड शुरू होने से पहले राजधानी दिल्ली और उसके आसपास के क्षेत्र में एक धुमैली सी चादर देखने को मिली। यह चादर स्मॉग यानी धुआँ और कुहासे के मेल से बनी थी। दिल्ली और एनसीआर क्षेत्र में एक बार फिर साँस लेना दूभर हो गया। 7 नवम्बर की रात को पूर्वी दिल्ली में एयर क्वालिटी इण्डेक्स 999 तक दर्ज किया गया। विश्व के 1650 शहरों में किये गये विश्व स्वास्थ्य संगठन के सर्वेक्षण ने दिल्ली की हवा सबसे ख़राब होने की पुष्टि की है। दिल्ली को लगातार तीसरी बार दुनिया की सबसे ज़्यादा प्रदूषित राजधानी का दर्जा मिला है।

दिल्ली-एनसीआर में लगातार साँस के रोगियों की संख्या बढ़ रही है। इसी बीच दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल ने एक बार फिर बुखार में मरहमपट्टी करते हुए ऑड-ईवन फ़ार्मूला लागू करने का ऐलान किया है जिसके अनुसार एक दिन सम संख्या वाले वाहन चलेंगे और एक दिन विषम संख्या वाले वाहन। साथ ही मेहनतकश जनता के पेट पर लात मारते हुए निर्माण (कन्स्ट्रक्शन) क्षेत्र के काम पर पूरी रोक लगा दी है। **यदि पर्यावरण के लिए ऐसा करना ज़रूरी है तो रोज़ काम करके खाने वाले सभी निर्माण मज़दूरों को पूँजीपतियों से शुल्क वसूलकर गुज़ारा भत्ता दिया जाना चाहिए।**

दुनिया में सबसे ज़्यादा प्रदूषित 10 शहरों में से 7 भारत में हैं। 2012 की विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार हर साल लगभग 17 लाख लोग वायु प्रदूषण के कारण मर जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के 15 साल से आयु के 93% बच्चे ऐसी हवा में साँस लेते हैं जो उनके स्वास्थ्य और विकास के लिए गम्भीर ख़तरा है। एक अध्ययन के अनुसार विकासशील देशों में 98% बच्चे विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा तय मानकों से कहीं अधिक ख़राब हवा में साँस लेते हैं, जबकि विकसित देशों में यह आँकड़ा 52% का है, परिणामस्वरूप बच्चों का शारीरिक और मानसिक विकास सामान्य तरीके से नहीं हो पाता।

दिल्ली में साल 2020 में 54 हज़ार लोगों की असामयिक मृत्यु और भारत में हर साल 20 लाख लोगों की मौत वायु प्रदूषण की वजह से ही होती है। यूनिसेफ़ की 2016 की एक रिपोर्ट के अनुसार सिर्फ वायु प्रदूषण के कारण हर पाँच वर्षों के दौरान दुनिया में 6 लाख बच्चों की मौत होती है।

मुनाफ़े की हवस को पूरा करने में लगी इस पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा पैदा किये गये जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण इत्यादि का सामना प्रकृति और पूरे समाज को करना पड़ रहा है, लेकिन मेहनतकश आबादी पर प्रदूषण की दोहरी मार पड़ रही है। प्रदूषण के कारण मज़दूरों को अक्सर काम से हाथ धोना पड़ता है। दूसरी ओर, इस आबादी के पास प्रदूषण से बचाव के लिए कोई भी उपाय मौजूद नहीं है। यह आबादी शहरों की गन्दी बस्तियों में रहते हुए सबसे ख़राब हवा में साँस लेती है और सबसे प्रदूषित पानी पीती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक़ वायु प्रदूषण दिल की बीमारियों, फेफड़ों के रोगों, फेफड़े के कैंसर, मस्तिष्क आघात जैसे जानलेवा बीमारियों के जोख़िम को बढ़ाने वाला एक प्रमुख कारण है। साँस की नली में संक्रमण का जोख़िम भी इसी से ही बढ़ रहा है। दमे के मरीज़ों की संख्या में लगातार इज़ाफ़ा हो रहा है। अमीर लोगों के लिए बाज़ार में महँगे एयर प्यूरीफ़ायर आ गये हैं। पूँजीवाद द्वारा पैदा किये गये नर्क में वे अपना एक हद तक सुरक्षित टापू बनाकर रह सकते हैं, लेकिन आम मेहनतकश आबादी कहाँ जायेगी?

दिल्ली में केजरीवाल सरकार ने आनन-फ़ानन में GRAP (ग्रैप) 4 स्टेज में प्रदूषण से निपटने के लिए कड़े उपाय किये, जिसमें दिल्ली के सार्वजनिक परियोजनाओं से सम्बन्धित निर्माण कार्यों और प्रदूषण फैलाने वाले ट्रकों और चार पहिया कमर्शियल वाहनों की एण्ट्री पर बैन लगाने का आदेश जारी किया गया। इसके तहत अन्य राज्यों से केवल सीएनजी, इलेक्ट्रिक और बीएस-छह मानकों का पालन करने वाले वाहनों को दिल्ली में प्रवेश करने की इजाज़त दी गयी। वायु गुणवत्ता प्रबन्धन आयोग (CAQM) के नये आदेश के अनुसार आवश्यक सेवाओं में शामिल नहीं होने वाले सभी मध्यम और भारी मालवाहक वाहनों की भी दिल्ली में एण्ट्री पर बैन लगा दिया गया। दिल्ली में प्रदूषण की स्थिति आमतौर पर सन्तोषजनक नहीं रहती और सर्दी शुरू होने से पहले यह समस्या भयंकर रूप धारण कर लेती है। लेकिन केन्द्र और राज्य सरकार के पास प्रदूषण से बचाव के लिए कोई भी योजना नहीं थी, जिसका खामियाज़ा आम आबादी को भुगतना पड़ रहा है।

पूँजीवादी व्यवस्था की बढ़ती हवस के कारण अन्धाधुन्ध अनियन्त्रित धुआँ उगलती चिमनियों के साथ-साथ सड़कों पर हर रोज़ निजी वाहनों की बढ़ती संख्या प्रदूषण के लिए मुख्य तौर पर ज़िम्मेदार है। अकेले दिल्ली में हर रोज़ सड़कों पर लगभग एक करोड़ से भी ज्यादा मोटर वाहन चलते हैं। इसकी मूल वजह पर्याप्त मात्रा में सार्वजनिक परिवहन के साधनों का न होना और पूँजीवादी असमान विकास के कारण पूरे देश से दिल्ली में काम-धन्धे के लिए लोगों का प्रवासन है। इसके कारण दिल्ली शहर पर भारी बोझ है और बढ़ते प्रदूषण में इसका भी योगदान है। यह पूँजीवादी विकास के मॉडल का कमाल है, जो कि व्यापक मेहनतकश आबादी को उसके निवास के करीब गुज़ारे योग्य रोज़गार नहीं मुहैया करा सकता। लाखों लोग दो-दो, तीन-तीन घण्टे सफ़र करके आसपास के शहरों से रोज़ दिल्ली आते हैं और फिर वापस जाते हैं।

इस मौसम में हवा ख़राब होने का एक और बड़ा कारण दिल्ली से सटे राज्यों, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में धान की पराली को जलाना भी है। बड़े पैमाने पर पराली को जलाने वाले धनी किसान हैं जिनके पास ज़मीन का बड़ा मालिकाना है। यही आबादी है जो पराली जलाकर नष्ट कर देती है। पराली जलाने से ज़मीन के कई पोषक तत्व भी नष्ट होते हैं और रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों पर निर्भरता बढ़ती जाती है। यह सब धनी किसान अपने तात्कालिक मुनाफ़े और बचत के लिए करते हैं जबकि बड़ी आबादी को इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती है। ज़्यादातर छोटे किसान पराली को कई कामों में इस्तेमाल कर लेते हैं।

हार्वेस्टर कम्बाइन जब धान की कटाई करता है तो धान का 50-60 सेण्टीमीटर डण्ठल खेत में ही छोड़ देता है, उसे ही पराली कहते हैं। बहुतेरे छोटे किसान तो अभी भी हाथ से धान काटते या कटवाते हैं, लेकिन बड़े किसान मज़दूरी का ख़र्च बचाकर आमदनी बढ़ाने के लिए बड़े पैमाने पर मशीनों का इस्तेमाल करते हैं। छोटे किसान यदि कम्बाइन का इस्तेमाल करते भी हैं तो ज़्यादातर मामलों में पराली जलाते नहीं। उसे हाथ से काटकर वे पशुओं के चारे, जाड़े में बिछाने या चटाई बनाने आदि में इस्तेमाल करते हैं।

पराली जलाने की गम्भीर समस्या के कई तकनीकी समाधान आज विकसित हो चुके हैं। पराली के उपयोग के कई विकल्प मौजूद हैं जैसे हार्वेस्टर कम्बाइन के साथ एक से डेढ़ लाख रुपये क़ीमत की 'सुपर स्ट्रॉ मैनेजमेण्ट सिस्टम' (एस.एस.एम.एस.) नामक मशीन जोड़ दी जाये। यह मशीन पराली के ऊपरी भाग को काटकर मिट्टी में मिला देती है। जड़ें (टूँड़ी) ज़मीन में रह जाती हैं, जिसके रहते टी.एच.एस.मशीन (टर्बो हैप्पी सीडर) से गेहूँ की बुवाई की जा सकती है। पराली से इथेनॉल कार्डबोर्ड का भी उत्पादन किया जा सकता है। मशरूम के उत्पादन हेतु भी पराली का प्रयोग किया जा सकता है।

इन विकल्पों के होने के बावजूद लेकिन सरकार बड़े किसानों पर सख़्ती करने से कतराती है। राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण के निर्देश पर पंजाब सरकार ने पहले पराली जलाने वाले किसानों पर प्राथमिकी दर्ज करना शुरू किया, फिर इसे रोक दिया गया। फिर पंजाब प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड सिर्फ़ चालान काटने लगा। धनी किसानों को कोई भी सरकार नाराज़ नहीं करना चाहती। पराली के दोबारा उपयोग में प्रति एकड़ 5 सौ रुपये से 2,000 रुपये तक का ख़र्च आता है। प्रति एकड़ 50 से 60 हज़ार रुपये की आमदनी करने वाला धनी किसान चाहे तो ऐसा आसानी से कर सकता है, लेकिन वह नहीं करता क्योंकि सरकार और प्रशासन उसके प्रति नरमी का रुख़ अपनाते हैं।

इन तथ्यों से साफ़ है कि प्रदूषण को बढ़ावा देने वाली यह पूँजीवादी व्यवस्था ही है। पर्यावरण का मसला भी वर्ग संघर्ष का एक अहम मसला है। शासक वर्ग पर्यावरण में होने वाली तबाही को आम तौर पर "मानव-निर्मित आपदा" बताता है। लेकिन हर मानव का इसमें कोई योगदान नहीं है। यह पूँजीपति वर्ग और ऐशो-आराम और ऐय्याशी के नशे में सिर से पाँव तक डूबा हुआ अमीर वर्ग है जो पर्यावरण को तबाह कर रहा है, जबकि उसकी क़ीमत आम मेहनतकश जनता चुका रही है। इस व्यवस्था के दायरे के भीतर मुनाफ़ाख़ोरी और पर्यावरण संरक्षण के बीच मौजूद अन्तरविरोध को हल नहीं किया जा सकता है। केवल और केवल समाजवादी व्यवस्था और मज़दूर सत्ता के मातहत ही इस समस्या का समाधान हो सकता है।

बारह मज़दूर यूनियनों का ऐलान!

90,000 मज़दूरों को इज़रायल भेजना इज़रायली ज़ायनवादियों की हत्यारी मुहिम का समर्थन करना है!

भारतीय मज़दूरों को इज़रायल भेजने का निर्णय रद्द करो! इज़रायल द्वारा फ़िलिस्तीन में जारी जनसंहार रोकने के लिए सभी ज़रूरी कदम उठाओ!

इज़रायल पिछले 75 वर्षों से फ़िलिस्तीनी जनता को उसकी जगह-ज़मीन से उजाड़कर उसे बुरी तरह से कुचलता आ रहा है। पिछले एक महीने में तो इसने दमन की सारी सीमाएँ लाँघ दी हैं। इस दौरान इज़रायल ने गाज़ा में लगातार अन्धाधुन्ध बमबारी करके 11,000 से अधिक फ़िलिस्तीनी लोगों का जनसंहार किया है जिनमें लगभग 4,500 बच्चे शामिल हैं। तमाम अन्तरराष्ट्रीय कानूनों की धज्जियाँ उड़ाते हुए इज़रायल ने अस्पतालों, स्कूलों और यहाँ तक कि शरणार्थी शिविरों को भी नहीं बख़्शा है। इज़रायल ने उन अस्पतालों पर भी निर्दयतापूर्ण हमले किये हैं जिनमें घायलों का इलाज चल रहा था और जहाँ लोग हवाई हमलों से बचाव के लिए शरण ले रहे थे। ऐसे ही एक अस्पताल में इज़रायल के हमले में 500 से अधिक घायलों व शरणार्थियों को अपनी जान गंवानी पड़ी। हमारी नज़रों के सामने जारी फ़िलिस्तीनीयों के इस नरसंहार पर अधिकांश देश मूक दर्शक बने बैठे हैं या महज़ खोखले बयान जारी कर रहे हैं।

भारत ने 1948 के बाद से ही फ़िलिस्तीनी जनता के मुक्ति संघर्ष का लगातार समर्थन किया है, लेकिन मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद भारत का इज़रायल की ओर झुकाव बढ़ता जा रहा है। इतना ही नहीं, भारत सरकार ने 90,000 भारतीय कामगारों को इज़रायल भेजने की घोषणा की है। इज़रायल द्वारा फ़िलिस्तीन पर जारी युद्ध के कारण हज़ारों फ़िलिस्तीनीयों के वर्क परमिट रद्द कर दिये गये हैं और उन्हें विस्थापित कर दिया गया है। इन श्रमिकों की जगह इज़रायल ने भारत से 1,00,000 श्रमिकों को भेजने का अनुरोध किया, जिसे भारत सरकार ने तुरन्त मंजूरी दे दी।

चाहे वह भारतीय मज़दूर हों या दुनिया के किसी भी देश के मज़दूर हो, हमें यह सनद रहनी चाहिए कि भारत सरकार या कोई अन्य बुर्जुआ सरकार मज़दूरों की भलाई के लिए उन्हें इज़रायल नहीं भेजेगी। वे अपने पूँजीवादी साम्राज्यवादी मित्रों की सेवा करने और उनके मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए मज़दूरों को इज़रायल भेज रहे हैं, जिसका इस्तेमाल अन्ततः फ़िलिस्तीनी जनता के बर्बर दमन के लिए किया जायेगा। भारत में सत्तासीन भाजपा ने सभी श्रम क़ानूनों को ख़त्म करने, मज़दूर अधिकारों का हनन करने और जनता के बीच हिन्दू-मुस्लिम और जातिगत बँटवारे के बीज बोने का ही काम किया है। मज़दूरों के हितों के प्रति इसे ज़रा भी इत्तेफ़ाक़ नहीं है। दुनियाभर में मज़दूर वर्ग के यही हालात हैं। ऐसे वक़्त में यह ज़रूरी है कि मज़दूर वर्ग इज़रायल द्वारा फ़िलिस्तीनीयों के नरसंहार के खिलाफ़ अपना प्रतिरोध दर्ज करे। हमें अपने-अपने देशों की सरकारों को बाध्य करना चाहिए कि वे अन्तरराष्ट्रीय दबाव बनाकर ज़ायनवादी हमले को तत्काल बन्द करवाएँ।

निम्नलिखित यूनियनों की ओर से हम भारत सरकार के इज़रायल में भारतीय निर्माण मज़दूरों को भेजने के फैसले की भर्त्सना करते हैं। हम माँग करते हैं कि इस फैसले को तत्काल वापस लिया जाये। इसके साथ ही, भारत सरकार को चाहिए कि वह इज़रायल द्वारा फ़िलिस्तीन पर जारी हमले को तत्काल बन्द कराने का प्रयास करे। भारत फ़िलिस्तीनी जनता के मुक्ति संघर्ष का समर्थन करे व इज़रायल के साथ अपने सभी राजनीतिक सम्बन्धों को ख़त्म करे।

- दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन (DSAWHU)
- महाराष्ट्र बाँधकाम कामगार यूनियन (एमबीकेयू)
- क्रान्तिकारी मानरेगा मज़दूर यूनियन
- दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन
- दिल्ली मज़दूर यूनियन
- दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन (F10/DRTU/NWD/37/14)
- बवाना औद्योगिक क्षेत्र मज़दूर यूनियन
- दिल्ली मेट्रो रेल कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन (F10/DRTU/NORTH EAST/2016/01)
- ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन
- करावल नगर मज़दूर यूनियन
- ग्रामीण मज़दूर यूनियन, अम्बेडकर नगर
- टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन, गोरखपुर

बंगलादेश में हज़ारों कपड़ा मज़दूरों की जुझारू हड़ताल

● भारत

बीते 31 अक्टूबर को बंगलादेश के ढाका में कपड़ा मज़दूरों ने वेतन बढ़ाने की माँग को लेकर हड़ताल शुरू कर दी और सड़कों पर प्रदर्शन किया। इस दौरान प्रदर्शन हिंसक हो गया और पुलिस ने मज़दूरों पर आँसू गैस छोड़े और लाठीचार्ज किया। इसमें दो मज़दूरों की मौत हो गयी। साथ ही मज़दूरों के खिलाफ़ कई मामले दर्ज़ किए गये हैं और कई मज़दूरों को गिरफ़्तार किया गया है। तात्कालिक तौर पर अभी सरकार की ओर से आश्वासन मिलने पर हड़ताल को वापस ले लिया गया है। मज़दूरों का कहना है कि अगर सरकार न्यूनतम वेतन नहीं बढ़ाती तो आगे इससे बड़े प्रदर्शन होंगे।

बंगलादेश की एक यूनियन के अनुसार कपड़ा मज़दूरों को मासिक न्यूनतम वेतन के रूप में 8,300 टका यानी 6,250 रुपये मिलते हैं। मज़दूरों की माँग है कि मासिक न्यूनतम वेतन 17,334 रुपये की जाये। वहीं बंगलादेश के मालिक इसे 25 प्रतिशत यानी 7500 रुपए पर अड़े हुए थे। इसके बाद ही हड़ताल ने व्यापक रूप लिया। फिर यह हड़ताल ढाका के गाज़ीपुर से मीरपुर के औद्योगिक इलाक़े तक फैल गयी। बताया जा रहा है कि हड़ताल में क़रीब 15,000 मज़दूर शामिल रहे। 'सेंटर फॉर पॉलिसी डायलॉग' की एक रिसर्च रिपोर्ट के मुताबिक कंबोडिया, चीन, भारत, इण्डोनेशिया, विएतनाम जैसे कपड़े बनाने वाले दूसरे देशों के मुकाबले बंगलादेश के कपड़ा मज़दूरों को सबसे कम न्यूनतम वेतन मिलता

है। 'बंगलादेश इंस्टिट्यूट फॉर लेबर स्टडीज' (बीआइएलएस) के विस्तृत अध्ययनों ने दिखाया है कि मज़दूरों को ग़रीबी रेखा से ऊपर रहने के लिए कम से कम 23,000 टका चाहिए। अभी बंगलादेश के हालात यह हैं कि देश में महँगाई दर में एक बार फिर उछाल आया और उसे काबू में करने के सरकार के सभी वायदे धरे के धरे रह गये और महँगाई दर 9.93 प्रतिशत पर पहुँच गयी।

'बंगलादेश गारमेंट मैन्युफैक्चरर्स एण्ड एक्सपोर्टर्स एसोसिएशन' (बीजीएमईए) के अनुसार, देश में लगभग 3,500 कपड़ा कारखाने हैं और वह चीन के बाद दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा कपड़ा उत्पादक है। देश में इस उद्योग से लगभग 40 लाख मज़दूर जुड़े हैं, जिनमें अधिकतर महिलाएँ हैं। इसके बावजूद यहाँ के कारखानों में स्थितियाँ नर्क से भी बदतर हैं। यहाँ श्रम क़ानूनों से लेकर सुरक्षा के बुनियादी इन्तज़ाम तक कारखानों में मौजूद नहीं हैं। इसी कारण आये-दिन कारख़ानों में आग लगने की घटनाएँ भी सामने आती हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार कारखानों में आग लगने की 50 से ज़्यादा बड़ी घटनाएँ हुई हैं, जिनमें हज़ारों मज़दूर मारे जा चुके हैं। इन्हें दुर्घटना या हादसा कहना सच्चाई के साथ अन्याय होगा। दुनिया की सारी बड़ी गारमेण्ट कम्पनियों का अधिकतम माल यहाँ तैयार होता है, जिसके लिए मज़दूर 18-18 घण्टे तक खटते हैं। इन कारखानों में साधारण दस्तानों और जूते तक नहीं दिये जाते और केमिकल वाले काम भी मज़दूर नंगे हाथों से ही करते हैं। फैक्टरियों में हवा की निकासी तक के लिए कोई उपकरण नहीं लगाये जाते, जिस वजह से हमेशा धूल-मिट्टी और उत्पादों की तेज़ गन्ध के बीच मज़दूर काम करते हैं। जवानी में ही मज़दूरों को बूढ़ा बना दिया जाता है और दस-बीस साल काम करने के बाद ज़्यादातर मज़दूर ऐसे मिलेंगे जिन्हें फेफड़ों से लेकर चमड़े की कोई न कोई बीमारी होती है। आज बंगलादेश के जिस तेज़ विकास की चर्चा होती है, वह इन्हीं मज़दूरों के बर्बर और नंगे शोषण पर टिका हुआ है। बंगलादेशी सरकार और उनकी प्रधानमन्त्री शेख हसीना ने भी इस हड़ताल पर सीधा दमन का रुख अपनाया है। आख़िर उसे भी अपने पूँजीपति आक़ाओं की सेवा करनी है।

बंगलादेश में जारी इस हड़ताल का हम भारत के मज़दूर भी समर्थन करते हैं। साथ ही बंगलादेश के मज़दूरों की यह हड़ताल इस बात को और पुख़्ता करती है कि आज के दौर में सिर्फ़ अलग-अलग कम्पनी में अलग से हड़ताल करके जीतना बहुत ही मुश्किल है। अगर आज मज़दूर आन्दोलन को आगे बढ़ाना है इलाक़े व सेक्टर के आधार पर सभी मज़दूरों को अपने यूनियन व संगठन बनाने होंगे। जैसे कि बंगलादेश में कपड़ा उद्योग से जुड़े सभी मज़दूरों ने हड़ताल की। इसी आधार पर ठेका, कैजुअल, परमानेण्ट मज़दूरों को साथ आना होगा और अपने सेक्टर और इलाक़े का चक्का जाम करना होगा। तभी हम मालिकों और सरकार को सबक सिखा पायेंगे। दूसरा सबक जो हमें सीखने की ज़रूरत है वह है बिना सही नेतृत्व के भी आज के समय में किसी लड़ाई को नहीं जीता जा सकता। भारत के मज़दूर आन्दोलन में भी कई अराजकतावादी संघाधिपत्यवादी मौजूद हैं, जो मज़दूरों की स्वत:स्फूर्तता के दम पर ही सारी लड़ाई लड़ना चाहते हैं और नेतृत्व या संगठन की ज़रूरत को नकारते हैं। सही नेतृत्व न होने के कारण ही आज बंगलादेश के कपड़ा मज़दूरों की हड़ताल किसी दिशा में बढ़ती नज़र नहीं आ रही, भले ही आज वहाँ के मज़दूर संघर्ष को तैयार हैं।

नारायणमूर्ति का एक और नारायणी प्रवचन : हफ़्ते में 70 घण्टे काम करो!

● अपूर्व मालवीय

हमारे देश में प्रवचकों की कोई कमी नहीं है। आए दिन कोई न कोई नया प्रवचक पैदा होता रहता है। हालाँकि जिसकी चर्चा इस लेख में है वह कोई नये प्रवचक नहीं हैं। बीच-बीच में उनके मुख से कोई न कोई प्रवचनी उद्गार-नसीहत-सलाह निकलती रहती है जिसको इस देश का खाया-पिया-अघाया मध्यवर्गीय जमात चरणामृत समझ कर पीता और सर से लगाता रहता है! ये महाशय हैं भारत की दिग्गज आईटी सेक्टर की कम्पनी इम्फोसिस के मालिक नारायण मूर्ति जी! अभी हाल ही में मूर्ति जी ने यह प्रवचन दिया है कि "देश की तरक्की के लिए हर रोज करीब 12 घण्टे और हफ्ते में कुल 70 घण्टे काम करना चाहिए!" इनके इस बयान पर कॉरपोरेट सेक्टर से लेकर गोदी मीडिया और फिल्मी जगत से जुड़े तमाम लोगों ने खूब वाहवाही की! ऐसा लगा जैसे इन्होंने वह मन्त्र बता दिया है कि कैसे किसी "देश को तरक्की की राह पर" आगे बढ़ाया जा सकता है! अब सवाल यह उठता है कि 12 घण्टे रोज और हफ्ते में 70 घण्टे काम करने के जिस मन्त्र का जाप नारायण मूर्ति कर रहे हैं उस मन्त्र से किसकी "तरक्की" होने वाली है! लेकिन सबसे पहले आते हैं काम के घण्टे के सवाल पर!

मूर्ति जी के अनुसार ज्यादा आमदनी और "देश की तरक्की" के लिए हफ्ते में 70 घण्टे काम करना चाहिए! लेकिन नारायण मूर्ति जी को शायद यह नहीं पता है कि इस देश की मजदूर-मेहनतकश आबादी हफ्ते में 70 घण्टे ही काम कर रही है! लेकिन उसके बावजूद वह गरिमापूर्ण जीवन जीने में असमर्थ है। रोज 10-12 घण्टे काम करने के बावजूद उन्हें केवल इतनी ही मज़दूरी मिल पा रही है जितने में वह बस कुछ बेहद मामूली बुनियादी ज़रूरतों को ही पूरा कर सके! इस देश की लगभग 94% मजदूर आबादी असंगठित क्षेत्र में काम करती है, जिनकी दिनचर्या और जीवन स्थितियाँ बहुत ही दयनीय स्थिति में हैं। इनके ऊपर छँटनी की तलवार तो लटकी ही रहती है साथ ही उनके काम के घण्टे और उसपर मिलने वाली मज़दूरी इतनी कम है कि वह बमुश्किल अपनी ज़रूरतों को पूरा कर पाते हैं। यही हाल खेतीहर मजदूरों से लेकर छोटी जोत के किसानों, रेहड़ी-पटरी वालों, रिक्शा-ठेला वालों, दुकानों-ढाबों-होटलों में काम करने वाले करोड़ों मेहनतकशों की है! लेकिन मूर्ति जी को उनकी ज़िन्दगी नहीं दिखती है!

भारत देश वैसे भी दुनिया के पहले 10 देशों की सूची में सातवें पायदान पर खड़ा है जिन देशों में काम के घण्टे सबसे ज्यादा हैं। भारत से ऊपर कांगो, गाम्बिया, भूटान, कतर, यूएई जैसे देश ही आते हैं। इनमें भी ज्यादातर देशों के मेहनतकशों की स्थिति भी बहुत ही बुरी है। कानूनी तौर पर भारत में 48 घण्टे प्रति सप्ताह का कानून लागू है। यानी 8 घण्टे 6 दिन का कार्यदिवस और सप्ताह में एक छुट्टी! 8 घण्टे कार्य दिवस का कानून लागू होते हुए भी यहाँ 10 से 12 घण्टे काम लिया जाता है। इसके बावजूद भारत प्रति व्यक्ति औसत आय के मामले में दुनिया के देशों में 142वें पायदान पर खड़ा है।

वहीं अब उन देशों पर एक नजर डाल लेते हैं जिन देशों में काम के घण्टे सबसे कम हैं लेकिन प्रति व्यक्ति औसत आय और लोगों का जीवन स्तर दुनिया में सबसे बेहतर है। इसमें नीदरलैंड में सप्ताह में 29 घण्टे काम और 3 दिन छुट्टी, डेनमार्क में 33 घण्टे काम तीन दिन छुट्टी, कनाडा में 32 घण्टे , ब्रिटेन में 36 घण्टे, जर्मनी में 34 घण्टे, जापान में 36 घण्टे, अमेरिका में 36 घण्टे का काम ही लिया जाता है। लेकिन इसके बावजूद इन देशों में प्रति व्यक्ति औसत आय, उनका रहन-सहन बहुत ही उन्नत है। अमेरिका जैसे देशों में हफ्ते में 32 घण्टे यानी चार दिन काम और 3 दिन की छुट्टी के लिए धरना प्रदर्शन चल रहे हैं। लेकिन भारत जैसे देश में उल्टी गंगा बहायी जा रही है और काम के घण्टे बढ़ाए जाने को लेकर प्रवचन दिये जा रहे हैं! "देश की तरक्की" के नाम पर लोगों की ज़िन्दगी के वास्तविक अर्थों को छीना जा रहा है! यानी आप एक इन्सान होने की बुनियादी शर्त को खोकर मशीन की तरह काम कीजिए! ज़िन्दगी जीने, मनोरंजन करने, घूमने-फिरने, नया सीखने या सृजनात्मक श्रम करने को भूल जाईये! नारायणमूर्ति जैसे पूँजीपतियों की तिजोरी को भरते रहिये! मोदी सरकार भी लगातार श्रम कानूनों में संशोधन करके काम के घण्टे बढ़ाये जाने की योजना पर काम कर रही है।

जहाँ तक काम के घण्टे निर्धारित करने का मामला है, 1921 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के समझौते के मुताबिक हफ्ते में 48 घण्टे काम करने का मानक निर्धारित किया गया था। 1935 आते-आते पश्चिमी देशों ने इसे घटाकर 40 घण्टे कर दिया! कुछ पश्चिमी देश तो हर 10 साल में काम के घण्टों को कम करते रहते हैं। लेकिन भारत में इसके 100 साल बाद भी 48 घण्टे का ही कानून लागू है। जबकि 8 घण्टे का काम, 8 घण्टे आराम, 8 घण्टे मनोरंजन का नारा दुनिया के मजदूर वर्ग ने 1880 के दशक में ही दिया था! तब से लेकर अब तक पूरी दुनिया में तकनीक, कौशल और उत्पादकता में अभूतपूर्व बढ़ोतरी हुई है! आज प्रौद्योगिकी के जिस स्तर पर दुनिया खड़ी है वहाँ दो से चार घण्टे काम करके ही उत्पादन की ज़रूरत को आसानी से पूरा किया जा सकता है! इसके साथ ही सभी का जीवन स्तर कई गुना बढ़ाया जा सकता है!

लेकिन नारायणमूर्ति जैसे लोग ये बात कभी नहीं बोलेंगे! क्योंकि इस मुनाफ़ाखोर व्यवस्था का मूल मन्त्र ही यही है कि मज़दूर जितने ज्यादा घण्टे काम करेगा, पूँजीपतियों को उतना ही अधिक मुनाफा प्राप्त होगा। अगर इन्हें देश की तरक्की की इतनी ही फ़िक्र है तो ये ठेका प्रथा को समाप्त करने, सभी को रोज़गार की गारण्टी देने, न्यूनतम मज़दूरी को बढ़ाये जाने की बात क्यों नहीं करते! ये क्यों नहीं कहते कि करोड़ों-अरबों रुपयों का पूँजीपतियों का कर सरकार माफ़ न करे! क्योंकि असल में ये अपनी तरक्की को ही देश की तरक्की समझते हैं! इनके लिए नारायण (पूँजी) ही सब कुछ है! इसलिए नारायण मूर्ति सहित कॉरपोरेट जगत के तमाम पूँजीपति बीच-बीच में काम के घण्टे बढ़ाए जाने या "देश सेवा व तरक्की" की नसीहत के नाम पर युवाओं और मेहनतकशों को इस तरह का 'नारायणी प्रवचन' देते रहते हैं!

चैट जीपीटी और "मानव समाज पर ख़तरा!"

(पेज 16 से आगे)

है। एक ऐसी व्यवस्था में जहाँ मनुष्य और मनुष्य का सम्बन्ध ही मनुष्य और मालों के सम्बन्ध के रूप में दिखलाई पड़ता है, वहाँ मानव द्वारा ही पैदा किए उत्पाद फेटिशिस्टिक चरित्र ले लेते हैं, यानी जो उसे सच्चाई देखने से रोकने का काम करने लगते हैं। मानव बनाम मशीन की समस्या भी फेटिशिस्टिक चरित्र ले लेती हैं। क्या इन परिकल्पनाओं में कोई सच्चाई भी है? इस सवाल पर हम दो बिन्दुओं पर बात करेंगे। एक, यह कि इस अवधारणा का दार्शनिक मर्म क्या है? और दूसरा इस परिकल्पना का राजनीतिक अर्थशास्त्र क्या है?

'मानव बनाम मशीन' परिकल्पना का दार्शनिक पहलू

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि चैट जीपीटी मशीन है जो मानव ज्ञान पर आधारित है। चूँकि चैट जीपीटी उन परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो जा रहा है, जिसे आबादी का एक बहुत बडा हिस्सा असफल रहता है, अल्फा गो 'गो' बोर्ड गेम को खेलने वाला गूगल द्वारा बनाया आर्टिफीशियल इण्टेलिजेंस प्रोग्राम है, जिसने मौजूदा मानव चैम्पियन को खेल में हरा दिया, इससे यह नतीज़ा निकाला जा रहा है कि यह कृत्रिम चेतना है जो मानवीय चेतना से उन्नतर हो गई है। क्योंकि चैट जीपीटी कहानी भी लिख देता है और कविताएँ भी लिख रहा है तो यह भी कहा गया कि मशीन कल्पना भी करने लगी है।

हमने ऊपर यही देखा कि जिसे कृत्रिम चेतना कहा जा रहा है वह वास्तव में मानव की मानसिक गतिविधि का ही अमूर्तन है। परन्तु चूँकि मानसिक गतिविधि अपने आप में सीमित नहीं है इसलिए उसका अमूर्तन भी कोई 'अन्तिम उत्पाद' नहीं है। मानव ज्ञान के उन्नततर होते जाने के साथ ही यह भी और उन्नततर होगा। चैट जीपीटी मशीन मानवीय ज्ञान के एक ख़ास स्तर का ही प्रतिबिम्बन करती है। मानव चेतना का गुण होता है कि वह वस्तु जगत का प्रतिबिम्बन करती है। यह प्रतिबिम्बन हूबहू आईने के प्रतिबिम्बन समान नहीं होता है। पहले स्तर पर हमारी आँखें, हमारी नाक, कान, जीभ और त्वचा यानी इन्द्रियों के जरिये भौतिक जगत की एक तस्वीर, एक खाका और एक रूपरेखा बनाते हैं। यह भौतिक जगत समाज और प्रकृति ही है। अब चूँकि समाज और प्रकृति दोनों ही परिवर्तनशील हैं तो ज़ाहिर है कि प्रतिबिम्बन भी परिवर्तनशील होगा। मानव मस्तिष्क की अमूर्तन और सामान्यीकरण करने की क्षमता के चलते ही हम इन्द्रियानुगत ज्ञान और फिर छलाँग लगाकर बुद्धिसंगत ज्ञान तक पहुँचते हैं। सामाजिक व्यवहार ही है जो लगातार ज्ञान को पैदा करता है। प्रकृति, समाज और विचार को बदलने की प्रक्रिया में ही नया ज्ञान पैदा होता है। न सिर्फ नया ज्ञान पैदा होता है बल्कि अमूर्तन और सामान्यीकरण की पद्धति भी उन्नत होती जाती है। एआई को मिलने वाला सारी सूचना मानव द्वारा अर्जित है और यह मशीन जिस अल्गोरिद्म का इस्तेमाल करती है, वह भी मानवीय बुद्धिसंगत ज्ञान का ही हिस्सा है। यह मार्क्स के उपरोक्त कथन को ही पुष्ट करता है कि मशीन मज़दूर की गतिविधि का ही अमूर्तन है।

कृत्रिम चेतना को मानव चेतना से मुक्त चेतना मानना व यह कल्पना करना कि चेतना कोई ऐसी चीज़ है, जो मानव के बाहर भी निर्मित की जा सकती है, ग़लत है। कुछ वैज्ञानिक चेतना को बिजली के समान मानते हैं जिनका कहना है कि जिस प्रकार प्राकृतिक रूप से बिजली को बादलों की टकराहट में पाया जाता है, उसी प्रकार उसे बाँध में पानी को टरबाइन पर गिराकर भी पैदा किया जा सकता है। एक समय गूगल के सीईओ रहे पीटर नॉरविग का तर्क था कि जिस तरह पक्षी की उड़ान को कृत्रिम तौर पर हवाई जहाज भी उड़ सकता है इसी प्रकार मानव मस्तिष्क की चेतना को मशीन में पैदा किया जा सकता है। परन्तु चेतना कोई प्रोटीन की मॉलिक्युलर संरचना या बिजली नहीं बल्कि सामाजिक मानव मस्तिष्क पुँज पर आधारित सक्रियता है जो जीवन के जटिल तानेबाने यानी समाज में विकसित होती है। और यह स्थैतिक नहीं होती है। यह स्वयं विकसित होती है। यह मानव चेतना द्वारा अर्जित होते और उन्नतर होते ज्ञान के रूप में ही सामने आ जाता है। मानव के उत्पादक संघर्ष, वर्ग संघर्ष और वैज्ञानिक प्रयोगों के व्यवहार से ही मानव ज्ञान नित निरन्तर उथले से ग़हरेपन की ओर बढ़ता है। मानव चेतना की भौतिकता का आधार जीवन व समाज है। यह परिकल्पना फ्रेन्कनस्टाइन नामक दानव की कल्पना ज़्यादा प्रतीत होती है जिसे केवल शरीर के विभिन्न अंगों को जोड़कर ज़िन्दा किया जा सकता है और उसमें चेतना स्वत: ही पैदा हो जायेगी!

एआई के चैट जीपीटी और तमाम मॉडलों को मानव मस्तिष्क का एक मॉडल कहा जाता है जो न्यूरल नेटवर्क पर आधारित है। इसे लार्ज लैन्वेज मॉडल कहा जाता है जो उपलब्ध डाटा पर काम करता है। इसे जो 'इन्द्रियग्राह्य ज्ञान' मिला है (उपलब्ध डाटा) वह मानव ज्ञान ही है। दूसरा] इसका ''बुद्धिसंगत'' ज्ञान भी मानवीय अवधारणागत ज्ञान ही है। गणितीय प्रकार्य और उसके बाद विकसित होने वाली पॉलिसी या अल्गोरिद्म मानव ज्ञान का ही अमल में लाया जाना है। कुल मिलाकर कहें तो यह एक मशीन ही है। परन्तु लम्बे समय से सिनेमा और पॉप्युलर साइन्स फ़िक्शन में यह सस्ती परिकल्पना परोसी जाती है कि आर्टिफ़िशियल इण्टेलिजेन्स (एआई) द्वारा मानवता के खिलाफ अपनी सभ्यता को खड़ा करेगी और मानवता को ग़ुलाम बनाएगी। अन्तिम बार जब गैरी कास्पोरोव को 'डीप ब्लू' ने हराया तब भी इस छिछली परिकल्पना को काफी संवेग मिला था और तब तक मिलता रहेगा जब तक कि इस व्यवस्था का ही समूल नाश नहीं होता है।

'मानव बनाम मशीन' परिकल्पनाओं का राजनीतिक अर्थशास्त्र

चैट जीपीटी एक लार्ज लैन्गवेज मॉडल है जिसे संचालित होने से पहले तमाम शब्दों और वाक्यों तथा भाषा की व्याकरण तथा उन्हें हल करने के लिए गणितीय प्रकार्यों यानी मानवीय अवधारणाओं की ज़रूरत होती है। इसका एक उदाहरण चैट जीपीटी का हिंसा और अश्लील डाटा को चैट जीपीटी को फीड करना था। इस डाटा को छाँटने के लिए केन्या के मज़दूरो ने महीनों बैठकर अश्लील समाग्री देखकर उसके तत्वों को छाँटा ताकि चैट जीपीटी यह 'सीख सके' कि क्या इस्तेमाल योग्य है और क्या नहीं! यह उन मज़दूरों के ही द्वारा इस्तेमाल किए पैमानों को अब मशीन की तरह ख़ुद ब ख़ुद इस्तेमाल कर सामग्री छाँटता है और ग़लती होने पर मज़दूर इसे बेहतर करते रहते हैं। यह दिखला देता है कि चैट जीपीटी भी पॉवरलूम की तरह ही मशीन है। केन्या के मज़दूरों को कम वेतन पर खटाकर और मानसिक अवसाद में पहुँचाकर ही चैट जीपीटी ने यह गुणवत्ता हासिल की कि वह अब इन अश्लील सन्देशों को पहचान लेता है। यह चैट जीपीटी के डेटा की एक किस्म का उद्घाटन था। केन्या के मज़दूरों के उदाहरण से यह उज़ागर हो जाता है कि मज़दूरों की सस्ती लूट पर चैट जीपीटी बना है। एआई को मानवता के ख़िलाफ़ रखना अपने आप में ग़लत है। यह कल्पना कि इन्सान को हटाकर मशीन से मुनाफ़ा कमाने वाले तन्त्र में काम लिया जा सकता है इस धारणा की जड़ में है।

आइए इस परिकल्पना को राजनीतिक अर्थशास्त्र की निगाह से परखते हैं। अगर आप बुनियादी राजनीतिक अर्थशास्त्रीय समझदारी को भी प्रयोग में लाएँ तो यह साफ़ है कि पूँजीपति का मुनाफ़ा बेशी मूल्य से पैदा होता है। पूँजीपति की पूँजी के दो हिस्से होते हैं: परिवर्तनशील पूँजी तथा स्थिर पूँजी। पूँजीपति द्वारा मज़दूरी पर लगायी पूँजी परिवर्तनशील पूँजी कहलाती है और यही बेशी मूल्य पैदा करती है और मुनाफ़े का स्रोत होती है। यह परिवर्तनशील पूँजी इसलिए ही कहलाती है क्योंकि यह श्रम शक्ति पर लगने वाला खर्च है और यही उत्पादन की प्रक्रिया में अतिरिक्त मूल्य या बेशी मूल्य पैदा करता है। उत्पादन के साधनों पर लगने वाली पूँजी स्थिर पूँजी कहलाती है। उत्पादन की प्रक्रिया में इसका मूल्य श्रम द्वारा माल में ज्यों का त्यों स्थानान्तरित हो जाता है। हम जिस परिकल्पना को परखना चाहते हैं उसके अनुसार उत्पादन की प्रक्रिया में मशीनें मज़दूरों को पूरी तरह से निकाल बाहर करेंगी! अभी अगर हम यह मानें कि इस उद्योग में नयी मशीन लगने के कारण मज़दूरों को काम से निकाल दिया जाता है। यानी मशीन पर लगने वाली पूँजी जो स्थिर पूँजी का हिस्सा है वह बढ़ेगी तथा मज़दूरी पर लगने वाला हिस्सा कम हो जाएगा। उत्पादन की प्रक्रिया से मशीन द्वारा परिवर्तनशील पूँजी कम करने (मज़दूर को काम से हटाने) का मतलब यह हुआ कि पूँजीपति के कुल पूँजी निवेश में कच्चे माल, मशीनरी यानी उत्पादन के साधनों पर खर्च मज़दूरी पर यानी परिवर्तनशील पूँजी होने वाले खर्च के अनुपात में बढ़ता है। क्या ऐसा होगा कि स्थिर पूँजी और परिवर्तनशील पूँजी के अनुपात में परिवर्तनशील पूँजी कम होते होते शून्य पर पहुँच जाएगी? नहीं, मज़दूरों को पूँजीपति उत्पादन की प्रक्रिया से पूर्णत: नहीं हटा सकता क्योंकि तब मुनाफ़ा ही खत्म हो जायेगा।

अब इसे एक और उदाहरण से समझें। मान लें कि सभी उद्योगों में पूर्ण मशीनीकरण हो गया। अब किसी उद्योग में कोई मज़दूर काम नहीं कर रहा है, किसी कार्यालय या दफ्तर में कोई मज़दूर या कर्मचारी काम नहीं कर रहा है, सारी सेवाओं के क्षेत्र में कोई मज़दूर काम नहीं कर रहा है, और ये सारा काम मशीनें कर रही हैं। यदि ऐसा होगा तो समाज में आय के विभिन्न रूप भी समाप्त हो जायेंगे। लेकिन यदि आय के विभिन्न रूप समाप्त हो जायेंगे तो पूँजीपतियों के उद्योगों आदि में मशीन द्वारा पैदा हो रही वस्तुओं व सेवाओं को ख़रीदेगा कौन? मुनाफ़ा भी समाप्त हो जायेगा, मज़दूरी भी समाप्त हो जायेगी, लगान भी समाप्त हो जायेगा। लेकिन पूँजीपति तो माल बेचकर मुनाफ़ा कमाने के लिए उत्पादन करता है, फ्री में लोगों को बाँटने के लिए नहीं! यही वजह से है पूँजीवाद में पूर्ण स्वचालन राजनीतिक अर्थशास्त्र के नज़रिये से भी नहीं सम्भव है। क्योंकि आय के ये सभी रूप मूल्य के ही हिस्से हैं, जो स्वयं कुछ भी नहीं बल्कि मज़दूरों के श्रम से ही पैदा होता है।

यह बुनियादी सी बात है जिसे समझकर हम पूँजीवाद में इस परिकल्पना की असम्भव्यता को जान सकते हैं। मूल प्रश्न इस व्यवस्था का है जो मुनाफ़े के लिए ही मशीन को मानव के बरक्स खड़ा करती है। एक ऐसी व्यवस्था में जहाँ समाज का केन्द्र मनुष्य होगा मुनाफ़ा नहीं केवल वहीं इस वास्तविक अन्तरविरोध को खत्म किया जा सकता है और केवल तब मशीन जो एक श्रम का औज़ार है वह मनुष्य का "सत चूसने का माध्यम" ना बनकर उसकी सृजनात्मक शक्ति बन जाएगी।

सापेक्षिक बेशी मूल्य का उत्पादन

(पेज 14 से आगे)

बढ़ता है, मुनाफ़े की औसत दर में गिरने की प्रवृत्ति अपने आपको अभिव्यक्त करती है और नतीजतन बेरोज़गारी, अतिउत्पादन व अल्पउपभोग की परिघटनाएँ सामने आती हैं। ऐसे दौरों में बेरोज़गार मज़दूरों की रिज़र्व सेना में निरपेक्ष रूप से बढ़ोत्तरी होती है।

यानी बेरोज़गार मज़दूरों की रिज़र्व सेना में बढ़ोत्तरी या कमी मूलत: तेज़ी और मन्दी के चक्र से जुड़ी हुई है। औद्योगिक चक्र किस अवस्था में है, यह तय करता है कि उद्योग शुद्ध रूप में श्रम को विकर्षित करेंगे, या आकर्षित करेंगे।

जैसा कि हमारा ऊपर पेश विश्लेषण दिखलाता है, तीन कारक आवश्यक व अतिरिक्त श्रमकाल की सापेक्षिक मात्राओं को तय करते हैं और इस प्रकार वे बेशी मूल्य की मात्रा और दर को भी निर्धारित करते हैं: **पहला**, श्रम की उत्पादकता; **दूसरा**, श्रम की सघनता; और **तीसरा**, कार्यदिवस की लम्बाई। श्रम की उत्पादकता बढ़ने पर अन्य चीज़ें समान रहने पर भी अतिरिक्त श्रमकाल सापेक्षिक रूप में बढ़ता है और यदि कुल मूल्य सृजन समान भी रहे तो उसमें श्रमशक्ति के मूल्य का हिस्सा, यानी जो अपने आपको मज़दूरी के रूप में प्रकट करता है, घट जाता है, जबकि बेशी मूल्य का हिस्सा, जो पूँजीपति के मुनाफ़े का स्रोत है, वह बढ़ जाता है। ध्यान रहे कि यदि श्रम की उत्पादकता बढ़ती है लेकिन कार्यदिवस व श्रम सघनता समान रहते हैं, तो कुल मूल्य सृजन उतना ही होता है, लेकिन उपयोग-मूल्यों की, यानी मालों की मात्रा बढ़ जाती है और समान मूल्य अब उपयोग-मूल्य की पहले से ज़्यादा मात्रा पर वितरित होता है। नतीजतन, माल का प्रति इकाई मूल्य कम हो जाता है। श्रम की सघनता बढ़ने का अर्थ है कि प्रति घण्टे मज़दूर द्वारा दिये जाने वाले श्रम की मात्रा में बढ़ोत्तरी हो जाती है। मसलन, मशीन की गति को बढ़ाकर या बीच के खाली अन्तरालों या विराम के समय को समाप्त कर पूँजीपति श्रम की सघनता को बढ़ाते हैं। इसके परिणामस्वरूप आवश्यक श्रमकाल कम होता है और अतिरिक्त श्रमकाल बढ़ता है। इसके ज़रिये मूल्य और उपयोग-मूल्य दोनों में ही वृद्धि होती है क्योंकि उतने ही समय में श्रम की मात्रा निरपेक्ष रूप से बढ़ती है, जो कि ज़्यादा मूल्य भी पैदा करती है और ज़्यादा उपयोग-मूल्य भी। कार्यदिवस की लम्बाई बढ़ाने का सीधा अर्थ है कुल श्रमकाल को निरपेक्ष रूप से बढ़ा देना, और यदि आवश्यक श्रमकाल समान ही रहता है, तो इसका अर्थ होगा अतिरिक्त श्रमकाल में निरपेक्ष बढ़ोत्तरी और नतीजतन मूल्य व उपयोग-मूल्य दोनों में वृद्धि।

(अगले अंक में जारी)

हम सब गाज़ा हैं!

(पेज 1 से आगे)

फ़िलिस्तीनियों को आज भी उनके घरों से खदेड़कर उनके घरों, ज़मीन और खेतों पर कब्ज़ा करने वाले लोग, आज भी फ़िलिस्तीनी जनता के कत्ले-आम और विस्थापन को जारी रखे हुए हैं। पिछले 75 साल बीतने के बाद आज दुनिया में 70 लाख फ़िलिस्तीनी शरणार्थी हैं। इसके अलावा, करीब 60 लाख फ़िलिस्तीनी वेस्ट बैंक और गाज़ा में रहते हैं, जो इज़रायली कब्ज़े में हैं। इन फ़िलिस्तीनियों को इनके ही देश में शरणार्थी बनाकर रखा गया है। उनके खिलाफ़ नस्लवादी अपॉर्थाइड यानी विलगाव की नीति इज़रायली ज़ायनवादियों ने थोप रखी है। उनके लिए पूरे इज़रायल में चेकपोस्ट, अलग सड़कें, अलग मुहल्ले बनाकर रखे गये हैं और वहाँ से भी इज़रायली सेटलर उपनिवेशवादी लगातार उन्हें बेदख़ल कर रहे हैं।

गाज़ा की स्थिति इसमें सबसे भयावह है। 2006 में गाज़ा की बहादुर जनता के संघर्ष के कारण इज़रायली ज़ायनवादी हत्यारों को वहाँ से भागना पड़ा। अन्य सेक्युलर कौमी आज़ादी के लिए लड़ने वाली शक्तियों को इज़रायल ने साम्राज्यवादियों की मदद से और अरब विश्व के समझौतापरस्त बुर्जुआ शासकों की मदद से कमज़ोर कर दिया था। इज़रायल ने ही शुरू में, 1980 के दशक में, इस्लामिक कट्टरपंथी संगठन मुस्लिम ब्रदरहुड की एक शाखा के रूप में गाज़ा में शुरू हुए हमास के आन्दोलन को खड़ा करने में हर प्रकार की मदद की, ताकि मज़दूर वर्ग और कम्युनिस्ट ताक़तें व अन्य सेक्युलर ताक़तें जो फ़िलिस्तीन में राष्ट्रीय मुक्ति के लिए लड़ रही थीं, वे किनारे लग जायें। लेकिन बाद में जनता के संघर्षों के दबाव में हमास का चरित्र भी बदला और 2008 में उसने मुस्लिम ब्रदरहुड से रिश्ते तोड़ लिए। वह इज़रायल के अन्त के लक्ष्य को छोड़कर 1967 के फ़िलिस्तीन-इज़रायल सीमा को स्वीकारने वाले दो राज्यों (इज़रायल व फ़िलिस्तीन) के समाधान पर आ गया। साथ ही, उसके राजनीतिक ब्यूरो के नेता खालिद मशाल के अनुसार, अब वह एक ऐसे फ़िलिस्तीनी राज्य की भी बात करने लगा जो कि अरबी मुसलमान, अरबी यहूदी और अरबी ईसाइयों को बराबर हक़ देता हो। *यह एक उदाहरण है कि जनसंघर्षों के दबाव में हमास को भी अपने चरित्र में परिवर्तन लाना पड़ा। निश्चित ही, अभी भी हमास एक इस्लामिक संगठन ही है। मज़दूर वर्ग के नज़रिये से राजनीतिक और विचारधारात्मक तौर पर उससे कोई एकता नहीं बन सकती है।* **लेकिन फ़िलिस्तीनी जनता की आज़ादी का समर्थन करने या उसके वीरतापूर्ण मुक्ति संघर्ष का समर्थन करने के लिए आपको हमास का समर्थक होने की कोई आवश्यकता नहीं है। फ़िलिस्तीनी जनता का मुक्ति संघर्ष तब भी जारी था, जब हमास नाम कोई संगठन पैदा भी नहीं हुआ था और आज भी वह जारी है।** किसी अन्य सेक्युलर, प्रगतिशील व क्रान्तिकारी नेतृत्व की अनुपस्थिति में जनता अपने संघर्ष को स्थगित नहीं कर देती है, वह उसे जारी रखती है, जो भी संसाधन उसके पास होते हैं और जो भी नेतृत्व निर्णायक रूप से लड़ने को तैयार होता है उसके साथ।

भारत में भी मीडिया इज़रायल को पीड़ित पक्ष के रूप में दिखला रहा है और एक ऐसी छवि पेश कर रहा है मानो इतिहास 7 अक्टूबर को हमास के नेतृत्व में हुए हमले के साथ ही शुरू हुआ। वह यह नहीं बता रहा है कि गाज़ा पर पिछले 16 वर्षों से भी अधिक समय से इज़रायल ने ज़मीन, हवा और समुद्र तीनों ओर से एक नाकेबन्दी थोप रखी है। गाज़ा की जनता तक न तो पर्याप्त मात्रा में भोजन पहुँचने दिया जाता है, न ईंधन और न ही अन्य आवश्यक वस्तुएँ और सेवाएँ। नतीजतन, दुनिया में सबसे ज़्यादा जनसंख्या घनत्व रखने वाली यह 'खुली जेल' फ़िलिस्तीनियों के लिए एक कब्रगाह बनी हुई है, जहाँ फ़िलिस्तीनी बच्चे-बूढ़े और जवान एक धीमी मौत मर रहे हैं। **7 अक्टूबर को फ़िलिस्तीनी जनता ने जेल तोड़ी और अपने औपनिवेशिक उत्पीड़कों, यानी ज़ायनवादी इज़रायल पर हमला बोला। इस हमले के विरुद्ध इज़रायली उपनिवेशवादियों को "आत्मरक्षा" का उतना ही अधिकार है, जितना कि भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवादियों को भगतसिंह व उनके साथियों व अन्य क्रान्तिकारियों द्वारा की गयी कार्रवाइयों के ख़िलाफ़ था, या अल्जीरिया में अल्जीरियाई मुक्ति योद्धाओं के हमले के विरुद्ध फ्रांसीसी उपनिवेशवादियों को था जिन्होंने हथियारों के दम पर अल्जीरिया पर कब्ज़ा कर रखा था।**

हत्यारे, नस्लवादी उपनिवेश-वादियों द्वारा आत्मरक्षा का तर्क दिया जाना न सिर्फ़ बकवास है, बल्कि अश्लील होने की हद तक मज़ाकिया है। अगर आप ज़ोर-ज़बर्दस्ती से किसी दूसरे राष्ट्र की ज़मीन पर कब्ज़ा करते हैं, उसके लोगों का नियमित और व्यवस्थित तौर पर नरसंहार करते हैं, अपने हथियारों की ख़रीदारों के सामने नुमाइश करने मात्र के लिए उन पर बम बरसाते हैं और नये-नये हथियारों का प्रयोग करते हैं, तो आपको उन लोगों द्वारा हिंस्र प्रतिरोध के लिए तैयार रहना चाहिए। यह हिंस्र प्रतिरोध न सिर्फ़ ऐसी दमित कौम का हक़ है, बल्कि इसके अलावा उनके पास और कोई विकल्प भी नहीं है।

लेकिन दुनिया भर का साम्राज्यवादी मीडिया और हमारे देश का गोदी मीडिया चीज़ों को सिर के बल खड़ा कर देता है। हर जगह फ़ासीवादी और प्रतिक्रियावादी शासक साम्राज्यवादी लूट और कब्ज़े के पक्ष में होते हैं, तब तक जब तक कि इस कब्ज़े का निशाना वे ख़ुद न हों। **लेकिन जनता को सच्चाई जाननी चाहिए।** मज़दूर वर्ग को हर जगह दमित-शोषित जनता के साथ खड़ा होना चाहिए। गाज़ा में जो हो रहा है, उसके बारे में अगर हम तटस्थ रहेंगे, यह सोचेंगे कि हज़ारों किलोमीटर दूर हो रहे नरसंहार से हमारा क्या मतलब, तो कल हमारे देश के फ़ासीवादी और प्रतिक्रियावादी हुक्मरान जब हमारे साथ ऐसा ही सुलूक करेंगे, तो हम भी अकेले होंगे। सर्वहारा वर्ग के अन्तरराष्ट्रीयतावाद का यह बुनियादी उसूल होता है कि हम दुनिया में कहीं भी होने वाले अन्याय के विरुद्ध अपनी आवाज़ को बुलन्द करते हैं। जो सर्वहारा वर्ग ऐसा नहीं करता वह स्वयं भी शोषित और दमित रहने के लिए अभिशप्त होता है।

साथ ही, हमें यह भी समझना होगा कि हमारे देश के हुक्मरानों के इज़रायली ज़ायनवादी हत्यारी औपनिवेशिक सत्ता के साथ पिछले तीन दशकों के दौरान अपवित्र गठबन्धन बने हैं। हमें कुचलने के तौर-तरीके भारत की पुलिस और सेना को सिखाने इज़रायल की पुलिस व खुफ़िया एजेंसी मोसाद के लोग नियमित तौर पर भारत आते हैं। भारत के भीतर प्रतिरोध को कुचलने के लिए खुफ़िया पेगासस ऐप भी भारतीय सरकार को इज़रायली ज़ायनवादियों से ही मिला है। साथ ही, "दंगा नियंत्रण" के नाम पर मज़दूरों को कुचलने से लेकर कश्मीर और उत्तर-पूर्व में दमित कौमों के उत्पीड़न के तमाम तौर-तरीके भारतीय हुक्मरान अपने इज़रायली ज़ायनवादी हत्यारे बन्धुओं से ही सीख रहे हैं। ज़ायनवादी इज़रायली उपनिवेशवादी केवल फ़िलिस्तीनी जनता के दुश्मन नहीं हैं, वे पूरी दुनिया के सभी दमित-शोषित जनताओं के दुश्मन हैं।

इज़रायल कोई देश नहीं है। यह एक सेटलर औपनिवेशिक परियोजना है। इसे अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी जैसे पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने मध्य-पूर्व में अपने हितों की रक्षा के लिए एक गुण्डा पोस्ट के रूप में खड़ा किया गया है। निश्चित ही, हिटलर ने लाखों यहूदियों का कत्ले-आम किया। इन यहूदियों को यूरोप में यहूदी-विरोधी नस्लवाद का सामना करना पड़ा। ऐसे यहूदियों ने हिटलर के खिलाफ बहादुरी से लड़ाई लड़ी। इनमें एक अच्छी-ख़ासी आबादी मज़दूरों व मेहनतकश यहूदियों की भी थी। और इनमें से कई कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी भी थे। **जिन प्रगतिशील व क्रान्तिकारी यहूदियों ने हिटलर और नात्सियों के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ी वे हमेशा ज़ायनवाद के विरुद्ध थे। ज़ायनवाद का अर्थ यहूदी लोगों की विचारधारा नहीं है। यह यहूदी लोगों के बीच मौजूद धुर-दक्षिणपन्थी, मज़दूर-विरोधी, प्रतिक्रियावादी और नस्लवादी पूँजीपतियों व टुटपुँजिया वर्गों की विचारधारा थी।** क्रान्तिकारी व प्रगतिशील यहूदी जनता ने हमेशा से इसका विरोध किया और आज भी कर रहे हैं। वे हर जगह और हर मंच पर स्पष्ट कर रहे हैं कि ज़ायनवाद का यहूदी जनता से कोई लेना-देना नहीं है। वे बार-बार बता रहे हैं कि यहूदियों के नाम पर फ़िलिस्तीनियों का ज़ायनवादी हत्यारों द्वारा कत्ले-आम उन्हें मंज़ूर नहीं है। पूरी दुनिया में ऐसी प्रगतिशील यहूदी आबादी सड़कों पर उतरकर इज़रायल का विरोध कर रही है। लेकिन साम्राज्यवादी मीडिया और हमारे देश का गोदी मीडिया इसे छिपा ले जाता है। वह इज़रायल के झूठे प्रचारों का यहाँ प्रसारण करता है, ताकि हमारे देश में आम मेहनतकश जनता इज़रायल के साथ हमदर्दी रखने लगे। **इससे ज़्यादा त्रासद कोई बात नहीं हो सकती है क्योंकि हमने स्वयं 200 साल की औपनिवेशिक गुलामी झेली है और अगर हम ही किसी बर्बर, नरसंहारक और नस्लवादी औपनिवेशिक सत्ता का समर्थन करेंगे, तो इससे ज़्यादा शर्मनाक और त्रासद बात और क्या हो सकती है?**

साथ ही, हर मेहनतकश और मज़दूर को यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि गाज़ा और समूचे फ़िलिस्तीन की संघर्षरत जनता के साथ एकजुटता रखने का मुसलमान होने से भी कोई रिश्ता नहीं है। साम्राज्यवादी प्रचार के

(पेज 10 पर जारी)

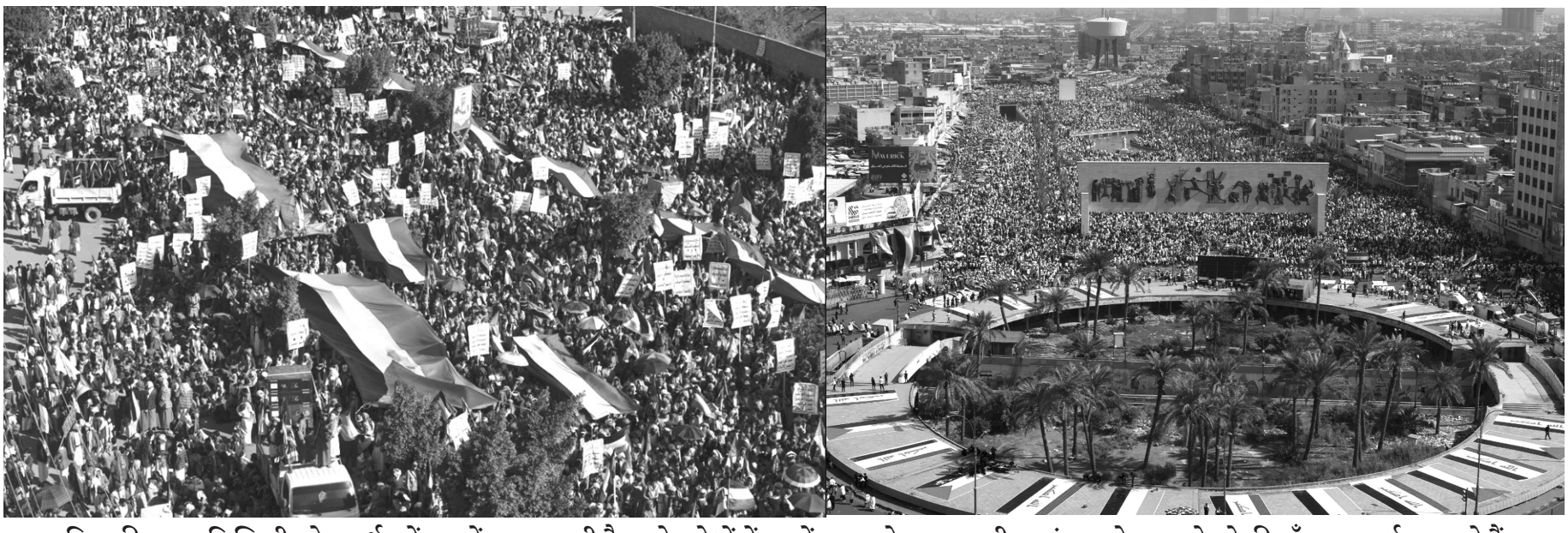

दुनिया की जनता फ़िलिस्तीन के समर्थन में सड़कों पर उतर रही है। अनेक देशों में लाखों-लाख लोग इज़रायली जनसंहार को तुरन्त रोकने की माँग पर प्रदर्शन कर रहे हैं।

हम सब गाज़ा हैं!

(पेज 9 से आगे)

असर के कारण कम ही लोग जानते हैं कि फ़िलिस्तीन में अरबी यहूदी और अरबी ईसाई भी रहते हैं, वे भी उतनी ही शिद्दत से फ़िलिस्तीन की आज़ादी के पक्षधर हैं जितनी शिद्दत से फ़िलिस्तीनी मुसलमान। फ़िलिस्तीनी मुसलमान आज से नहीं बल्कि सदियों से अरबी यहूदियों और अरबी ईसाइयों के साथ सामंजस्य में रहते आये हैं। यह बेवजह नहीं है कि इज़रायली राज्य की सीमाओं के भीतर और साथ ही गाज़ा और वेस्ट बैंक में अरबी यहूदियों और अरबी ईसाइयों के साथ भी इज़रायली ज़ायनवादी हत्यारे उसी किस्म का नस्लवादी और दमनकारी बर्ताव करते हैं, जैसा वे फ़िलिस्तीनी मुसलमानों के साथ करते हैं। आपको शायद पता भी होगा कि गाज़ा पट्टी पर अपने नये नरसंहारक हमले के दौरान की जा रही भयंकर बमबारी में इज़रायल ने गाज़ा के ईसाई लोगों और उनके चर्चों को ख़ास तौर पर निशाना बनाया है। हम इस पूरी बात को समझने में तब ग़लतियाँ कर बैठते हैं, जब हम इसे मुसलमानों और यहूदियों के बीच के टकराव के रूप में देखते हैं, जबकि वास्तव में यह एक ग़ुलाम और उपनिवेश बनायी गयी कौम और इज़रायली ज़ायनवादी यूरोपीय उपनिवेशवादियों के बीच का संघर्ष है। **यह एक गुलाम देश का गुलाम बनाने वाले उपनिवेशवादियों के विरुद्ध संघर्ष है।**

आज जब इज़रायल गाज़ा के अस्पतालों, संयुक्त राष्ट्र द्वारा चलाये जा रहे पनाहघरों और स्कूलों व चर्चों तथा मस्जिदों को निशाना बना रहा है, तो इज़रायल के समर्थन में प्रचार करने वाला साम्राज्यवादी मीडिया यह कहता है ऐसा इज़रायल को इसलिए करना पड़ रहा है क्योंकि हमास के योद्धा नागरिकों को ढाल के तौर पर इस्तेमाल करते हैं या उन्होंने इन अस्पतालों, चर्चों, मस्जिदों या स्कूलों को अपने छिपने की जगह बना रखी है। **लेकिन अन्तरराष्ट्रीय कानूनों के अनुसार, ऐसी सूरत में भी आप किसी अस्पताल, स्कूल या पूजा घर को निशाना नहीं बना सकते हैं।** यूँ तो यह इज़रायली दावा भी झूठा है और कई विदेशी एजेंसियों या अन्य देशों द्वारा चलाये जा रहे अस्पताल में काम करने वाले डॉक्टरों ने वीडियो आदि के ज़रिये इसका सुबूत भी पेश किया है। लेकिन एक झूठ को सौ बार दुहराकर "सच" बनाने के नात्सी तर्क को ही ज़ायनवादी भी मानते हैं। वास्तव में, ज़ायनवादी विचारधारा और राजनीति के एक नस्लवादी विचारधारा और राजनीति होने के कारण नात्सियों की फ़ासीवादी विचारधारा व राजनीति से गहरा सम्बन्ध था। ज़ायनवादियों के बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में सीधे नात्सियों से रिश्तों के प्रमाण मौजूद हैं। इसी से पता चलता है कि ज़ायनवादियों का यहूदी लोगों के कल्याण आदि से कोई लेना-देना नहीं है, वरना उनके लाखों यहूदियों का नरसंहार करने वाले नात्सियों से रिश्ते न होते। दरअसल, किसी अस्पताल में यदि कोई तथाकथित आतंकवादी भी छिपा हो, तो भी कोई राज्य या सरकार उस अस्पताल पर बमबारी नहीं कर सकता है। कल्पना करें कि आपका कोई रिश्तेदार किसी अस्पताल में भर्ती है। सरकार घोषणा करती है कि उसी अस्पताल में कोई आतंकवादी छिपा है और वह उस पर बम गिराने जा रही है। क्या यह सही होगा? अन्तरराष्ट्रीय कानून इसी वजह से इसकी इजाज़त नहीं देता है और ऐसी स्थितियों के समाधान के दूसरे तरीके होते हैं जो सरकारों द्वारा अपनाये जाने चाहिए और अपनाये जाते भी रहे हैं। लेकिन इज़रायल को फ़िलिस्तीनियों की नस्ली व एथनिक सफ़ाई का एक बहाना चाहिए, उनका नरसंहार करने का एक बहाना चाहिए ताकि मध्य-पूर्व में पश्चिमी साम्राज्यवादियों का एक लठैत, एक गुण्डा बैठा रहे और उनके आर्थिक हितों की हिफ़ाज़त करता रहे।

गाज़ा के साथ खड़े होना आज दुनिया के हर इन्साफ़पसन्द, तरक्कीपसन्द और जागरूक इन्सान के लिए ज़रूरी क्यों है? क्योंकि गाज़ा का इज़रायली ज़ायनवादी उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष केवल मध्य-पूर्व का एक क्षेत्रीय मसला नहीं है। फ़िलिस्तीनी जनता का प्रतिरोध-युद्ध और मुक्ति संघर्ष आज विश्व की राजनीति में सबसे ज्वलनशील पदार्थों में से एक है। फ़िलिस्तीनी जनता का मुक्ति संघर्ष आम तौर पर समूचे साम्राज्यवाद-पूँजीवाद को कमज़ोर बना रहा है और आज विश्व पूँजीवाद के नाक का नासूर बना हुआ है। फ़िलिस्तीनी जनता इज़रायली उपनिवेशवादी राज्य की स्थापना के समय लाखों की संख्या में पूरे अरब विश्व में बिखेर दी गयी थी। आज समूची अरब जनता फ़िलिस्तीनी जनता के दुख-दर्द को शिद्दत से महसूस करती है। इज़रायल के साथ समझौतापरस्ती करने के कारण लेबनॉन, जॉर्डन, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, आदि सभी देशों की जनता अपने हुक्मरानों से नफ़रत करती है। इज़रायल समूची अरब जनता के लिए अमेरिकी साम्राज्यवाद का प्रतीक है, उसका पिट्ठू है और यह बात बिल्कुल सही भी है। इज़रायली बर्बरता और नस्लवाद के विरुद्ध उसकी घृणा अथाह है। **अरब विश्व में उठने वाले किसी भी जनज्वार में फ़िलिस्तीनी मुक्ति का सवाल हमेशा शामिल रहा है और हमेशा शामिल रहेगा।** इसलिए नहीं कि वे मुसलमान पहचान को साझा करते हैं। इसलिए कि वे साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपनी नफ़रत को साझा करते हैं। साम्राज्यवाद और ज़ायनवादी नस्लवादी विचारधारा के ख़िलाफ़ फ़िलिस्तीनी जनता का प्रतिरोध पूरी दुनिया में पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ रही जनता के लिए दशकों से प्रेरणास्रोत रहा है और आगे भी रहेगा।

साम्राज्यवादी हमेशा ही मुक्ति के लिए लड़ने वाली जनता को आतंकवादी बताती है। क्या ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने शहीदे-आज़म भगतसिंह और उनके साथियों को आतंकवादी नहीं करार दिया था? इसमें कोई नयी बात नहीं है। लेकिन दुनिया भर में आज अगर तमाम देशों में लाखों-लाख आम लोग फ़िलिस्तीनी जनता के मुक्ति संघर्ष और गाज़ा के लोगों के समर्थन में और इज़रायली ज़ायनवादी उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ रैलियाँ निकाल रहे हैं, तो यह साफ़ है कि साम्राज्यवादियों के लाख प्रचार के बावजूद जनता अन्तत: सच्चाई को पहचान जाती है। **आज पूरी दुनिया में इज़रायली ज़ायनवादी राज्य आम लोगों के लिए नफ़रत और घृणा की चीज़ है, वह अमेरिकी व पश्चिमी साम्राज्यवाद के एक टुच्चे लठैत और गुण्डे से ज़्यादा कोई औक़ात नहीं रखता जो पश्चिमी साम्राज्यवाद द्वारा दिये गये जनसंहार के हथियारों और अरब विश्व के जनविरोधी हुक्मरानों की चुप्पी और समझौतापरस्ती के कारण अरब विश्व की जनता को आतंकित करने, दबाने और कुचलने का काम कर रहा है। वह बेहद डरपोक सेटलर उपनिवेशवादियों का राज्य है, जो पश्चिमी साम्राज्यवाद की मदद के बिना एक घण्टे भी नहीं टिक सकता है। यही वजह है कि इज़रायल के तमाम यूरोपीय यहूदी जो अपने मूल देशों की नागरिकता भी रखते थे, 7 अक्टूबर के बाद ही बड़ी संख्या में पोलैण्ड, यूक्रेन, हंगरी, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में वापस भाग गये!** यह भी सोचने की बात है कि इज़रायल के तमाम उपनिवेशवादी ज़ायनवादी दोहरी नागरिकता क्यों क़ायम रखते हैं! इसलिए क़ायम रखते हैं क्योंकि सबसे ज़्यादा आत्मविश्वास से लबरेज़ दिखने वाले दमनकारी हुक्मरान भी जानते हैं कि दुनिया में कोई भी दमन स्थायी नहीं होता, दुनिया में कोई भी देश हमेशा के लिए गुलाम बनाकर नहीं रखा जा सकता है, चाहे ये दमनकारी कितने ही नरसंहार क्यों न करें, कितनी ही क्रूरता और बर्बरता क्यों न करें।

इज़रायल कोई देश नहीं है। जिस देश को आज साम्राज्यवाद इज़रायल के नाम पर प्रचारित करते हैं, वह वास्तव में फ़िलिस्तीन ही है, जिस पर पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने एक सेटलर उपनिवेशवादी चौकी बिठा रखी है। पश्चिमी साम्राज्यवादियों की इस उपनिवेशवादी चौकी का नाम इज़रायल है। इस चौकी को चलाने के लिए 1917 में ही यूरोप के नस्लवादी श्रेष्ठतावादी विचारधारा रखने वाले और यहूदी बुर्जुआ वर्ग व टुटपुँजिया वर्ग से आने वाले प्रतिक्रियावादी ज़ायनवादियों ने ली थी। इनका मकसद था आयरलैण्ड में ब्रिटिश बस्ती व चौकी (जिसे अल्स्टर कहा गया था) की तर्ज़ पर फ़िलिस्तीन में पश्चिमी साम्राज्यवाद की एक बस्ती और चौकी, एक यहूदी अल्स्टर बिठाना। फ़िलिस्तीन को ही इसके लिए क्यों चुना गया? ज़ायनवादियों ने अपने नस्लवादी यहूदी राज्य के लिए पहले लातिन अमेरिका व अफ्रीका के कुछ देशों पर भी विचार किया था। लेकिन 1908 में मध्य-पूर्व में तेल मिला। यह कुछ ही वर्षों के भीतर पश्चिमी साम्राज्यवाद के लिए सबसे रणनीतिक माल बन गया और इसलिए अब ज़ायनवादी आन्दोलन और ब्रिटिश साम्राज्यवाद में एक समझौता हुआ कि यह यहूदी उपनिवेशवादी व नस्ली श्रेष्ठतावादी राज्य फ़िलिस्तीन की जनता को बेदख़ल करके बनाया जाये। इसके लिए ब्रिटेन ने ज़ायनवादी हत्यारे गिरोहों को फ़िलिस्तीन ले जाकर बसाना शुरू किया, उन्हें हथियारों से लैस किया और फिर 1917 से 1948 के बीच हज़ारों फ़िलिस्तीनियों का इन ज़ायनवादी धुर-दक्षिणपन्थी गुण्डा गिरोहों द्वारा कत्ले-आम किया गया और लाखों फ़िलिस्तीनियों को उनकी जगह-ज़मीन से बेदख़ल किया गया। यह प्रक्रिया आज भी जारी है। **यही कारण है कि हम इसे सेटलर उपनिवेशवादी राज्य कहते हैं। इज़रायल नाम की कोई कौम या देश नहीं है। यह केवल और केवल एक सेटलर उपनिवेशवादी राज्य है जो मध्य-पूर्व में पश्चिमी साम्राज्यवाद के हितों, विशेषकर तेल से जुड़े हितों, की हिफ़ाज़त के लिए खड़ा किया गया है।**

यही वजह है कि दुनिया में हर जगह इंसाफ़पसन्द लोग गाज़ा के साथ खड़े हैं, इज़रायली उपनिवेशवादी प्रोजेक्ट का विरोध कर रहे हैं जो अमेरिकी साम्राज्यवादी हत्यारों द्वारा फेंके हुए टुकड़ों पर पल रहा है। गाज़ा की जनता का अदम्य साहस, अकल्पनीय बर्बरता और क्रूरता के सामने भी घुटने न टेकने का दम और साम्राज्यवाद और नस्लवाद के खिलाफ़ लड़ते जाने की ज़िद पूरी दुनिया में संघर्षरत मेहनतकशों, मज़दूरों, दमित राष्ट्रों, दमित समुदायों व नस्लों तथा जातियों के लिए एक प्रतीक है, एक मिसाल है। यह दिखलाती है कि जनता कभी हारती नहीं है। जब तक वह जीतती नहीं, तब तक वह हारती भी नहीं है। वह लड़ती रहती है। वह नहीं थकती क्योंकि उसके दिल में आज़ादी की न दबायी जा सकने वाली चाहत है। दमनकारी हत्यारे थक जाते हैं, क्योंकि उनके घृणित दिमाग़ में केवल दमन, अन्याय और नरसंहारों को अपने मुनाफ़े की ख़ातिर जनता पर थोपने की चाहत है।

हमारे देश में इस मामले की पूरी जानकारी न होने के कारण उतने बड़े पैमाने पर अभी तक इज़रायल द्वारा जारी गाज़ा की जनता के नरसंहार के विरुद्ध बड़े प्रदर्शन नहीं हो सके हैं। हमारे देश में भी जगह-जगह सैंकड़ों प्रदर्शन हुए हैं, जिन्हें दबाने की मोदी सरकार ने पूरी कोशिश की है। लेकिन ये प्रदर्शन और भी बड़े होंगे, यदि फ़िलिस्तीनी जनता के वीरतापूर्ण संघर्ष और घृणित इज़रायली नस्लवादी ज़ायनवादी उपनिवेशवाद के बारे में बड़े पैमाने पर लोगों को जानकारी दी जाये। हमारे देश में भी इंसाफ़पसन्द लोगों की कोई कमी नहीं है। लेकिन हमें फ़िलिस्तीन के मुक्ति संघर्ष के इतिहास और उसके वर्तमान के बारे में और ज़ायनवादी इज़रायली उपनिवेशवाद की गन्दी सच्चाई के बारे में पूरे देश की जनता को बताना होगा। यह क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग का कर्तव्य है कि समूची मेहनतकश जनता को वह सच से अवगत कराये और उसके आधार पर उसे जागृत, गोलबन्द और संगठित करे। यह काम आज हमें करना ही होगा।

इस समस्या का समाधान फ़िलिस्तीनी जनता की कौमी मुक्ति और एक समाजवादी फ़िलिस्तीन के निर्माण के साथ ही होगा। चाहे यह कुछ वर्षों बाद हो या कुछ दशकों बाद। इज़रायली उपनिवेशवादी राज्य पहले नहीं था। वह आगे भी नहीं रहेगा। एक सेक्युलर, जनवादी और समाजवादी फ़िलिस्तीन होगा जहाँ मुसलमान, यहूदी और ईसाई व अन्य समुदायों की जनता साथ में रहेगी। आज इस दिशा में प्रगति के लिए कोई नेतृत्वकारी राजनीतिक ताक़त नहीं है। लेकिन आज का तात्कालिक कार्यभार फ़िलिस्तीनी जनता के लिए उनकी कौमी आज़ादी है। इस कौमी आज़ादी के बाद अपना भविष्य किस प्रकार और कैसे निर्मित करना है, यह फ़िलिस्तीनी जनता तय करेगी। निश्चित ही, फ़िलिस्तीनी सर्वहारा वर्ग और आम मेहनतकश जनता इस कौमी आज़ादी की लड़ाई में भी आगे की कतारों में खड़ी है और उसके आगे समाजवाद के लिए संघर्ष में भी वह नेतृत्वकारी भूमिका में होगी। आज का कार्यभार जो इतिहास के एजेण्डे पर पहला बिन्दु है, वह है इज़रायली उपनिवेशवादी राज्य का समूल नाश, साम्राज्यवादी दमन और लूट का फ़िलिस्तीन से सफ़ाया और एक सेक्युलर और जनवादी फ़िलिस्तीन की स्थापना। ●

मज़दूर आन्दोलन में मौजूद किन प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग का लड़ना ज़रूरी है?

क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा!

(आठवीं क़िस्त)

● शिवानी

'बिगुल' के पिछले कुछ अकों से 'अर्थवाद' पर हमारी चर्चा जारी है। पिछले अंक में हमने लेनिन के हवाले से बताया था कि मज़दूरों के आम संगठन और क्रान्तिकारियों के संगठन (जिनमें कि उन्नत चेतना से लैस, मार्क्सवाद को आत्मसात किये हुए मज़दूर स्वयं भी शामिल होते हैं) में फ़र्क होता है यानी कि एक जन संगठन और हिरावल पार्टी के बीच फ़र्क होता है, जो फ़र्क अर्थवादी विचलन का शिकार लोग न तो समझ पाते हैं और न ही इसे अमल में ही ला पाते हैं। लेनिन जब **'क्या करें?'** में अर्थवादियों की आलोचना प्रस्तुत करते हैं तो उनके निशाने पर अर्थवादियों की सांगठनिक प्रश्नों पर नौसिखुएपन और आदिमता से ग्रस्त समझदारी भी प्रमुखता से है। हमने पिछले अंक में इस बात की चर्चा भी की थी कि अर्थवादी, संगठन और राजनीति दोनों के ही मामले में, सामाजिक जनवाद से ट्रेड यूनियनवाद की ओर भटकते रहते हैं।

हमने पिछले अंक में यह भी बताया था कि लेनिन ट्रेड यूनियन और हिरावल पार्टी के बीच तीन-सूत्री अन्तर बताते हैं, दरअसल ये अन्तर जन संगठन और पार्टी के बीच के आम तौर पर अन्तर को ही दर्शाते हैं क्योंकि इन दोनों प्रकार के संगठनों के कामों की अन्तर्वस्तु और उनका दायरा अलग होता है। लेनिन स्पष्ट करते हैं कि जिन देशों में राजनीतिक स्वतन्त्रता हासिल है, यानी जहाँ पूँजीवादी जनतन्त्र अस्तित्व में आ चुके हैं, वहाँ ट्रेड यूनियन और राजनीतिक संगठन के बीच का अन्तर आम तौर पर स्पष्ट हो जाता है, लेकिन रूस जैसे देशों में, जहाँ निरंकुशशाही मौजूद है, वहाँ ट्रेड यूनियन और सामाजिक जनवादी संगठन के तमाम अन्तरों को ख़त्म कर दिया गया है क्योंकि वहाँ मज़दूरों के सभी संगठनों व सभी अध्ययन मण्डलों पर रोक लगी हुई है, उन्हें ग़ैर-क़ानूनी घोषित किया गया है और मज़दूरों के आर्थिक संघर्ष का प्रमुख रूप और प्रमुख हथियार – हड़ताल – एक दण्डनीय अपराध माना जाता है। हालाँकि पाठक सोच सकते हैं कि हमारे देश में तो अब भी कई मौक़ों पर हड़ताल को दण्डनीय अपराध ही घोषित कर दिया जाता है, विशेषकर एस्मा जैसे काले क़ानूनों का उपयोग करके। वास्तव में हमारे देश में पूँजीवादी जनवाद ही इतनी अधूरा और विखण्डित है कि शासक वर्गों द्वारा मज़दूर अधिकारों पर हमला बोलना कहीं अधिक सुगम है। हालाँकि आज यह बात और भी अन्य बहुत से देशों पर लागू होती है। पूँजीवाद के मौजूदा नव उदारवादी दौर में तो बुर्जुआ जनवाद के "शीर्ष शिखरों" वाले देशों में भी लेनिन के दौर के मुकाबले स्थिति काफ़ी बदल चुकी है और मज़दूर वर्ग को हासिल कई स्वतन्त्रताएँ और अधिकार आज वहाँ भी छीने जा रहे हैं।

बहरहाल, लेनिन रूस की विशेष परिस्थितियों का उल्लेख जिस मक़सद से कर रहे हैं वह यह है कि रूस के इन हालात ने आर्थिक संघर्ष में हिस्सेदारी करने वाले मज़दूरों को राजनीतिक सवालों में दिलचस्पी लेने के लिए जहाँ एक ओर प्रेरित किया है वहीं दूसरी ओर इसने सामाजिक जनवादियों को इस बात के लिए "प्रेरित" किया है कि वे सामाजिक जनवाद और ट्रेड यूनियनवाद को एक ही चीज़ समझने लगे हैं। ऐसे में क्रान्तिकारियों के अलग संगठन की ज़रूरत की बात उनके दिमाग़ में आती ही नहीं है।

'क्या करें? से लेनिन का निम्न उद्धरण विशेष रूप से ट्रेड यूनियन और पार्टी के सम्बन्धों को समझने के लिए महत्वपूर्ण है:

"आर्थिक संघर्ष के लिए मज़दूरों के संगठन ट्रेड यूनियन संगठन होने चाहिए। हर सामाजिक जनवादी मज़दूर को इन संगठनों की यथासम्भव सहायता करनी चाहिए और उनमें सक्रिय भाग लेना चाहिए। **लेकिन यह माँग करना कत्तई हमारे हित में नहीं है कि केवल सामाजिक-जनवादियों को ही ट्रेड यूनियनों का सदस्य बनने के हक़ दिए जाएँ : इससे तो जनता पर हमारे प्रभाव का दायरा संकुचित ही होगा।** ट्रेड यूनियनों में उन सभी मज़दूरों को शामिल होने दीजिये जो मालिकों और सरकार के ख़िलाफ़ संघर्ष करने के लिए एक होने की आवश्यकता को महसूस करते हैं। यदि ट्रेड यूनियनें उन सभी लोगों की एकता स्थापित नहीं करेंगी, जिनमें कम से कम यह प्राथमिक समझ पैदा हो चुकी है और यदि वे बहुत व्यापक ढंग के संगठन नहीं बनेंगे, तो वे अपने उद्देश्यों को कभी पूरा नहीं कर सकेंगे। ये संगठन जितने ही अधिक व्यापक होंगे, हमारा असर भी उन पर उतना ही अधिक व्यापक होगा – और यह असर केवल आर्थिक संघर्ष के "स्वतःस्फूर्त" विकास के कारण नहीं पैदा होगा, बल्कि वह ट्रेड यूनियनों के समाजवादी सदस्यों की अपने साथियों को प्रभावित करने की प्रत्यक्ष और सचेतन कोशिशों का परिणाम भी होगा।" (*ज़ोर हमारा*)

यह उद्धरण क्यों महत्वपूर्ण है? इसलिए क्योंकि लेनिन यहाँ एक बेहद ज़रूरी प्रस्थापना रख रहे हैं। वह प्रस्थापना है कि ट्रेड यूनियन या फिर किसी भी अन्य जन संगठन में विचारधारा को सदस्यता की पूर्वशर्त नहीं बनाया जा सकता है। ऐसा करना जन संगठनों के "जन" चरित्र का मखौल उड़ाने के समान होगा और जन संगठनों के काम करने के दायरे को संकुचित करेगा और जनता के बीच क्रान्तिकारियों के राजनीतिक प्रभाव को भी कम करेगा, जैसा लेनिन ने ऊपर बताया है। यानी जन संगठनों के भीतर क्रान्तिकारी हिरावल पार्टी का ब्लॉक काम करता है, उसी प्रकार जैसा ट्रेड यूनियनों के भीतर सामाजिक जनवादी मज़दूर (यानी कि कम्युनिस्ट) काम करते हैं। इसके साथ ही लेनिन यह भी बताते हैं कि जन संगठन, अपवादस्वरूप स्थितियों को यदि छोड़ दिया जाए, तो खुले तौर पर ही काम करते हैं और यही वांछनीय भी है। लेकिन केवल वैधीकरण के द्वारा एक ऐसा ट्रेड यूनियन संगठन बनाने की समस्या हल नहीं की जा सकती है, जो कम से कम गुप्त हो और अधिक से अधिक व्यापक हो। हालाँकि लेनिन साथ में यह भी जोड़ते हैं कि मज़दूर आन्दोलन के वैधीकरण से, लम्बी दूरी में, हमारा ही फ़ायदा होगा। **लेनिन यहाँ दरअसल यह कहना चाहते हैं कि जन संगठनों के प्रति कम्युनिस्टों की सही पहुँच और पद्धति का सवाल एक अहम सवाल है, जो केवल क़ानूनी मान्यता मिलने से औपचारिक और सतही तौर पर ही हल हो सकता है और वास्तव में क्रान्तिकारी जनदिशा को लागू करने के बुनियादी प्रश्न से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।** इसके विपरीत क्रान्तिकारियों का संगठन यानी कि कम्युनिस्ट पार्टी पूरी की पूरी खुली और क़ानूनी दायरे में काम करने वाला संगठन नहीं होती है। जन संगठन, अपनी परिभाषा से ही, गुप्त संगठन नहीं हो सकते हैं, उल्टे, इन्हें अधिकतम सम्भव व्यापक होने की दरकार होती है।

लेनिन बताते हैं कि ट्रेड यूनियन संगठन न केवल आर्थिक संघर्ष को विकसित और मज़बूत करने के लिए बहुत मूल्यवान साबित हो सकते हैं, बल्कि वे राजनीतिक उद्वेलन और क्रान्तिकारी संगठन के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण सहायक बन सकते हैं। हालाँकि **लेनिन यह भी जोड़ते हैं कि इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए और ट्रेड यूनियन आन्दोलन को सामाजिक जनवाद/ क्रान्तिकारी सर्वहारा राजनीति की वांछित दिशा में ले जाने के लिए सबसे पहले अर्थवाद की सीमाओं को समझना, उन्हें उजागर करना और उसके ख़िलाफ़ संघर्ष को निर्देशित करना बेहद आवश्यक कार्यभार है।** लेनिन रूसी अर्थवादियों की ट्रेड यूनियन सम्बन्धी नियमावलियों का उदाहरण देते हुए दिखलाते हैं कि उनका बुनियादी दोष यह है कि वे एक व्यापक मज़दूर संगठन को क्रान्तिकारी संगठन से गड्डमड्ड कर देते हैं और जन संगठनों के ढाँचे को कठोरता से निर्दिष्ट संरचना वाले संगठन में तब्दील कर देते हैं। यह स्वयं दिखलाता है कि अर्थवादी किस प्रकार सामाजिक जनवाद से ट्रेड यूनियनवाद की ओर बहकते रहते हैं और वे इस विचार से कितने दूर खड़े हैं कि **कम्युनिस्ट कार्यकर्ता को सबसे पहले क्रान्तिकारियों का ऐसा संगठन बनाने की फ़िक्र करनी चाहिए जो सर्वहारा वर्ग के सम्पूर्ण मुक्ति संग्राम का नेतृत्व कर सके।** लेनिन स्पष्ट करते हैं कि एक ओर ओर तो अर्थवादी "मज़दूर वर्ग की राजनीतिक मुक्ति" और "ज़ार की निरंकुशता" के ख़िलाफ़ संघर्ष की बाते करते हैं, वहीँ दूसरी ओर इस प्रकार की नियमावलियाँ बनाकर वे वास्तव में दिखला देते हैं कि वे सामाजिक जनवाद के रूप में क्रान्तिकारी सर्वहारा राजनीति के असली राजनीतिक कार्यभारों से पूरी तरह से अनभिज्ञ हैं।

अर्थवादियों द्वारा ट्रेड यूनियन जैसे जन संगठन के नियमों को इतना भारी-भरकम बनाकर पेश करना यह भी दिखलाता है कि किस प्रकार ट्रेड यूनियन नौकरशाही और लाल फ़ीताशाही अर्थवादी संगठनों के बीच पनपती है और ट्रेड यूनियन के वास्तविक कार्यभार इन नियम-क़ानूनों के जंगल में खो जाते हैं। यह बात विशेष तौर पर भारत की बड़ी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों पर शब्दशः लागू होती है। लेनिन इस बात को रेखांकित करते हैं कि यदि हम ट्रेड यूनियनों को मज़दूरों का व्यापक संगठन बनाना चाहते हैं तो हमें कठोर औपचारिक ढाँचे को छोड़ना होगा और जन संगठनों को ग़ैर-रस्मी बनाकर रखना होगा।

लेनिन आगे कहते हैं:

"इससे जो सबक निकलता है वह बहुत ही सीधा-सादा है: **यदि हम क्रान्तिकारियों के एक मज़बूत संगठन की ठोस नींव से शुरुआत करेंगे, तो हम पूरे आन्दोलन के स्थायित्व की गारण्टी कर सकेंगे और सामाजिक जनवादी आन्दोलन और ट्रेड यूनियन आन्दोलन- दोनों के उद्देश्यों को हासिल करने में सफल होंगे।** इसके विपरीत यदि हम मज़दूरों के एक व्यापक संगठन से शुरुआत करेंगे, जिसे प्रायः सबसे ज़्यादा जनता की "पहुँच के अन्दर" समझा जाता है, तो हम इन दोनों में से किसी भी उद्देश्य को पूरा नहीं कर पायेंगे, और चूँकि हम बिखरे हुए रहेंगे और पुलिस बार-बार हमारी ताक़त को तोड़ती जायेगी... ।"[3]

यानी आर्थिक संघर्षों के लिए किये जाने वाले ट्रेड यूनियन आन्दोलन की सफलता की पूर्वशर्त भी क्रान्तिकारियों के संगठन यानी कि हिरावल पार्टी का निर्माण है। और **यहीं पर लेनिन पेशेवर क्रान्तिकारी की अवधारणा को लाते हैं जिसके बिना लेनिनवादी बोल्शेविक पार्टी की बात करना अकल्पनीय है।** पेशेवर क्रान्तिकारियों से लेनिन का अभिप्राय ऐसे कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं से है जो पार्टी और क्रान्ति के काम के अलावा और सभी कामों से आज़ाद हों और जिनके पास आवश्यक सैद्धान्तिक ज्ञान यानी मार्क्सवादी दर्शन और विज्ञान की समझ हो, राजनीतिक अनुभव हो और संगठन का अभ्यास हो।

इस बात को लेनिन **'क्या करें?'** में इस प्रकार व्याख्यायित करते हैं:

"मैं ज़ोर देकर यह कहता हूँ: (1) नेताओं के एक स्थायी और आन्दोलन का क्रम बनाए रखने वाले संगठन के बिना कोई भी क्रान्तिकारी आन्दोलन टिकाऊ नहीं हो सकता; (2) जितने अधिक व्यापक पैमाने पर जनता स्वतःस्फूर्त ढंग से संघर्ष में खींचते हुए आन्दोलन का आधार बनेगी और उसमें भाग लेगी, ऐसा संगठन बनाना उतना ही ज़्यादा ज़रूरी होता जायेगा, और इस संगठन को उतना अधिक मज़बूत बनना होगा (क्योंकि जनता के अधिक पिछड़े हुए हिस्सों को गुमराह करना लफ्फाज़ों के लिए ज़्यादा आसान होता है); (3) **इस प्रकार के संगठन में मुख्यतया ऐसे लोगों को होना चाहिए, जो अपने पेशे के रूप में क्रान्तिकारी कार्य करते हों;** (4) निरंकुश राज्य में इस प्रकार के संगठन की सदस्यता को हम जितना ही अधिक ऐसे लोगों तक *सीमित* रखेंगे,जो अपने पेशे के रूप में क्रान्तिकारी कार्य करते हों और जो राजनीतिक पुलिस को मात देने की विद्या सीख चुके हों, ऐसे संगठन का सफाया करना उतना ही अधिक मुश्किल होगा; और (5) मज़दूर वर्ग तथा समाज के अन्य वर्गों के उतने ही *अधिक* लोगों के लिए यह सम्भव हो सकेगा कि वे आन्दोलन में शामिल हों और उसमें सक्रिय काम करें।"

लेनिन यहाँ यह भी स्पष्ट करते हैं तमाम गुप्त कामों को पेशेवर क्रान्तिकारियों की यथासम्भव छोटी से छोटी संख्या के हाथों में केन्द्रित करने का मतलब यह नहीं है कि ये क्रान्तिकारी "सब लोगों के लिए सोचा करेंगे" और जनसमुदाय आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेंगे। इसके विपरीत जनसमुदाय अपने बीच में से अधिकाधिक संख्या में पेशेवर क्रान्तिकारियों को पैदा करेंगे और राजनीतिक प्रशिक्षण के महत्त्व को समझेंगे। गुप्त कामों को क्रान्तिकारियों के एक संगठन के हाथों में केन्द्रित करने का मतलब अन्य जन संगठनों के कार्य के विस्तार और गुणवत्ता को किसी भी रूप में कम करना नहीं है, ऐसे जन संगठन जो आम जनसमुदायों के लिए ही बने है और जिनका ढाँचा ढीला और कम से कम गुप्त होता है। लेनिन पुनः दुहराते हैं कि ऐसे जन संगठनों और क्रान्तिकारियों के संगठन के बीच के फ़र्क और विभाजक रेखा को गड्डमड्ड करना या मिटा देना, इस समझदारी को, कि जन आन्दोलन में काम करने के लिए ऐसे पेशावर क्रान्तिकारियों की आवश्यकता होती है जिनका काम ही क्रान्ति करना हो, धुँधला बना देना न सिर्फ़ बेतुका है बल्कि आन्दोलन के लिए हानिकर भी है। लेनिन के शब्दों में कहें तो "हमारा काम क्रान्तिकारियों को नौसिखुओं के धरातल पर उतार लाने की पैरवी करना नहीं, बल्कि नौसिखुओं को ऊपर उठाकर क्रान्तिकारियों के धरातल पर पहुँचा देना है।"

हम देख सकते हैं कि इन महत्वपूर्ण सांगठनिक प्रश्नों पर, जिनमें जन संगठन और पार्टी के बीच के अन्तर का प्रश्न सर्वोपरि है, अर्थवादियों द्वारा प्रदर्शित किये गए अवसरवाद की लेनिन द्वारा कितनी निर्मम आलोचना प्रस्तुत की गयी है। दरअसल क्रान्तिकारी मार्क्सवाद की हिफ़ाज़त में अर्थवाद के विरुद्ध लेनिन द्वारा चलाये गए इस विचारधारात्मक संघर्ष और सैद्धान्तिक बहस को जानना क्रान्तिकारी सर्वहारा के लिए आज भी उतना ही आवश्यक है, जितना कि लेनिन के दौर में था, बल्कि कुछ अर्थों में आज यह पहले से भी अधिक ज़रूरी कार्यभार बन चुका है। भारत के मज़दूर आन्दोलन में मौजूद विचारधारात्मक विभ्रमों और ग़ैर-मार्क्सवादी रुझानों के चलते इस बहस की याददिहानी वैसे भी उन्नत मज़दूर तत्वों और क्रान्तिकारियों के लिए फ़ायदेमन्द ही साबित होगी।

(अगले अंक में जारी)

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 15

अध्याय-13 (जारी)

सापेक्षिक बेशी मूल्य का उत्पादन

• अभिनव

हमने देखा कि निरपेक्ष बेशी मूल्य की पद्धति से बेशी मूल्य की दर को बढ़ाने के लिए पूँजीपति कुल श्रमकाल को निरपेक्ष रूप से बढ़ा देता है। मज़दूर की श्रमशक्ति की कीमत यानी मज़दूरी के समान रहने पर आवश्यक श्रमकाल स्थिर रहता है, जबकि अतिरिक्त श्रमकाल बढ़ जाता है। अतिरिक्त श्रमकाल में होने वाली यह बढ़ोत्तरी पूरी तरह से पूरे श्रमकाल में हुई निरपेक्ष बढ़ोत्तरी के कारण होती है। लेकिन सापेक्षिक बेशी मूल्य के मामले में ऐसा नहीं होता है।

सापेक्षिक बेशी मूल्य

सापेक्षिक बेशी मूल्य कुल श्रमकाल में निरपेक्ष रूप से बढ़ोत्तरी करके नहीं प्राप्त किया जाता है। यह आवश्यक श्रमकाल में सापेक्षिक कमी लाकर किया जाता है। ऐसा किस स्थिति में हो सकता है? हम जानते हैं कि आवश्यक श्रमकाल कुल श्रमकाल का वह हिस्सा होता है, जिसमें मज़दूर अपने व अपने परिवार के जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक वस्तुओं के मूल्य के बराबर मूल्य पैदा करता है। यदि मज़दूर वर्ग की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक इन वस्तुओं व सेवाओं (यानी मज़दूरी-उत्पादों) की कीमत ज़्यादा होगी, तो आवश्यक श्रमकाल ज़्यादा होगा क्योंकि उनके बराबर मूल्य सृजित करने में मज़दूर को ज़्यादा समय लगेगा। यदि ये मज़दूरी-उत्पाद सस्ते होंगे तो मज़दूर पहले से कम समय में उनकी कीमत के बराबर मूल्य को सृजित कर पाएँगे और नतीजतन आवश्यक श्रमकाल में कमी आयेगी। परिणामस्वरूप, आवश्यक श्रमकाल में कमी आयेगी और पूँजीपति वर्ग खुले या प्रच्छन्न तरीके से मज़दूरों की औसत मज़दूरी को घटा सकेगा। यदि कुल श्रमकाल में कोई अन्तर नहीं आता है और श्रम की सघनता समान रहती है, तो अतिरिक्त श्रमकाल में सापेक्षिक बढ़ोत्तरी होगी और अतिरिक्त मूल्य की दर में बढ़ोत्तरी होगी और नतीजतन मुनाफ़े की दर में भी बढ़ोत्तरी हो सकती है। यदि श्रमकाल 8 घण्टे ही रहता है, तो श्रम की सघनता समान रहने पर, मज़दूर अभी भी कुल मिलाकर उतना ही नया मूल्य सृजित कर रहे होंगे, जितना कि पहले कर रहे थे। लेकिन इस नये मूल्य में मुनाफ़े का हिस्सा बढ़ जायेगा, जबकि मज़दूरी का हिस्सा कम हो जायेगा।

इसका यह अर्थ नहीं है कि मज़दूर की *वास्तविक मज़दूरी* भी अनिवार्यत: कम हो गयी है। वास्तविक मज़दूरी का अर्थ होता है कि मज़दूर अपनी दी गयी मज़दूरी में कितनी वस्तुएँ व सेवाएँ ख़रीद सकता है, यानी, दी गयी मज़दूरी में ख़रीदी जा सकने वाली मालों की टोकरी या बास्केट। मज़दूरी यदि मुद्रा में नॉमिनली कम हो, तो यह ज़रूरी नहीं है कि वास्तविक मज़दूरी भी कम हो रही हो, हालाँकि ऐसा हो भी सकता है। यदि मज़दूरी-उत्पाद उसी दर से सस्ते हुए हैं, जिस दर से मुद्रा में मज़दूरी में कमी आयी है, तो वास्तविक मज़दूरी में कोई अन्तर नहीं आयेगा।

दूसरे शब्दों में, सापेक्षिक बेशी मूल्य को बढ़ाने का तरीका है श्रम की उत्पादकता को बढ़ाकर आवश्यक श्रमकाल को सापेक्षिक तौर पर कम करना।

लेकिन श्रम की उत्पादकता किन उद्योगों में बढ़ने पर आवश्यक श्रमकाल को कम किया जा सकता है और इस प्रकार सापेक्षिक बेशी मूल्य प्राप्त किया जा सकता है? **किसी भी उद्योग में श्रम की उत्पादकता के बढ़ने पर आवश्यक श्रमकाल कम नहीं होता।** आवश्यक श्रमकाल केवल उन उद्योगों में श्रम की उत्पादकता को बढ़ाने पर कम हो सकता है जो स्वयं मज़दूरी-उत्पाद पैदा करते हों, यानी वे उत्पाद बनाते हों जो नियमित तौर पर मज़दूर वर्ग के उपभोग में जाते हैं, या फिर उन उद्योगों में श्रम की उत्पादकता को बढ़ाने पर कम हो सकता है जो मज़दूरी-उत्पाद बनाने वाले उद्योगों को यंत्रों या कच्चे मालों की नियमित रूप से आपूर्ति करते हैं, क्योंकि ऐसे में मज़दूरी-उत्पाद बनाने वाले उद्योगों में श्रम की उत्पादकता स्थिर रहने पर भी कुल लागत कम हो जाती है और उत्पाद का कुल मूल्य कम हो जाता है।

तो फिर किसी भी अन्य उद्योग में श्रम की उत्पादकता बढ़ने का क्या नतीजा होता है? हमने देखा कि मज़दूरी-उत्पादों का उत्पादन करने वाले उद्योगों या उन उद्योगों को उत्पादन के साधनों की आपूर्ति करने वाले उद्योगों में श्रम की उत्पादकता बढ़ने का नतीजा यह होता है कि उनके द्वारा उत्पादित माल सस्ते हो जाते हैं। यानी मज़दूरी-उत्पाद सस्ते हो जाते हैं, आवश्यक श्रमकाल कम हो जाता है और श्रमशक्ति का मूल्य भी घट जाता है। अन्य किसी भी उद्योग में यदि आम तौर पर श्रम की उत्पादकता बढ़ती है, तो मज़दूरों के कार्यदिवस की लम्बाई और श्रम की सघनता के स्थिर रहने पर कुल मूल्य उतना ही सृजित होता है क्योंकि मूल्य और कुछ नहीं बल्कि वस्तुकृत अमूर्त श्रम ही है, जिसे सामाजिक रूप से आवश्यक श्रमकाल में मापा जाता है। लेकिन अब इतने ही श्रमकाल में पहले से ज़्यादा उपयोग-मूल्य पैदा हो रहे हैं, यानी उत्पादित मालों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो गयी है क्योंकि श्रम की उत्पादकता बढ़ गयी है। श्रम की उत्पादकता बढ़ने का अर्थ ही यही है कि हर घण्टे मज़दूर पहले से ज़्यादा माल पैदा कर रहा है। यानी, अब पहले जितना मूल्य ही पहले से ज़्यादा उपयोग-मूल्यों पर वितरित होगा। नतीजतन, अब माल का मूल्य और साथ ही कीमत गिर जायेगी। जब मज़दूरी-उत्पाद सस्ते होते हैं, तो श्रमशक्ति का मूल्य भी कम होता है। मज़दूरी-उत्पाद पैदा करने वाले उद्योगों या उन्हें उत्पादन के साधनों की आपूर्ति करने वाले उद्योगों को छोड़कर अन्य किसी भी उद्योग में ऐसा होने पर श्रमशक्ति का मूल्य नहीं कम होता है क्योंकि अन्य उद्योगों में श्रम की उत्पादकता बढ़ने पर मज़दूरी-उत्पाद नहीं सस्ते होते। यानी श्रम की उत्पादकता किसी भी उद्योग में बढ़ने पर उसके माल सस्ते होते हैं। लेकिन जब मज़दूरी-उत्पाद पैदा करने वाले उद्योगों व उन्हें उत्पादन के साधनों की आपूर्ति करने वाले उद्योगों में श्रम की उत्पादकता बढ़ती है, तो मज़दूरी-उत्पाद सस्ते होते हैं और नतीजतन श्रमशक्ति का मूल्य भी कम हो जाता है। इसे एक उदाहरण से समझें।

मान लें कि किसी कारखाने में 10 सिलाई मज़दूर उत्पादकता के दिये गये स्तर पर पहले 10 घण्टे में 40 कमीज़ें बनाते थे। यानी, कुल 100 घण्टों में 40 कमीज़ों का उत्पादन होता था। यदि 1 घण्टे के सामाजिक श्रमकाल का मौद्रिक समतुल्य रु. 50 है, तो 40 कमीज़ों का मूल्य हुआ रु. 5000 और एक कमीज़ का मूल्य हुआ रु 125। अब यदि श्रम की उत्पादकता बढ़ जाती है और अब वही 10 मज़दूर 10 घण्टे में 65 कमीज़ों का निर्माण कर रहे हैं, तो अब 100 घण्टे के सामाजिक श्रमकाल में 65 कमीज़ों का उत्पादन हो रहा है। चूँकि कुल श्रमकाल पहले जितना ही है और चूँकि मूल्य और कुछ नहीं बल्कि जम गया, या, संघनित अमूर्त सामाजिक श्रम ही है, इसलिए कुल मूल्य पहले की ही तरह रु. 5000 होगा। लेकिन अब पहले के विपरीत यह रु. 5000 कुल 40 कमीज़ों पर वितरित नहीं होगा, बल्कि 65 कमीज़ों पर वितरित होगा। यानी अब 65 कमीज़ों का कुल मूल्य रु. 5000 होगा और एक कमीज़ का मूल्य होगा रु. 76.25। यानी, मालों का प्रति इकाई मूल्य घट जायेगा और माल सस्ता हो जायेगा, भले ही समस्त मालों का कुल मूल्य पहले जितना ही रहे या बढ़ी श्रम उत्पादकता के साथ विस्तारित पुनरुत्पादन की सूरत में पहले से भी ज़्यादा हो जाये। अब यदि यह कमीज़ आम कमीज़ है, जिसका नियमित तौर पर मज़दूर वर्ग भी उपभोग करता है, तो श्रमशक्ति का मूल्य घटेगा। लेकिन अगर हम किसी लक्ज़री यानी अमीरों की ऐय्याशी में जाने वाले किसी माल के ऊपर यही उदाहरण लागू करें, मसलन, कोई लक्ज़री कार या बाइक आदि, तो श्रम की उत्पादकता बढ़ने के कारण उसके मूल्य में जो गिरावट आयेगी, उसका श्रमशक्ति के मूल्य पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा और यह सापेक्षिक बेशी मूल्य नहीं बढ़ायेगा।

अब एक और भ्रम को दूर कर लेते हैं, जो अक्सर मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों को हो जाता है। किसी भी उद्योग में मालों का मूल्य का निर्धारण सामाजिक रूप से होता है। यानी, मालों के मूल्य में आने वाले उतार या चढ़ाव उस समूचे उद्योग में उत्पादन की औसत स्थितियों में बदलाव आने का नतीजा होते हैं। यानी उपरोक्त मामले में कमीज़ों की कीमत गिरी क्योंकि श्रम की उत्पादकता केवल एक कारखाने में नहीं बल्कि औसतन समूचे उद्योग में बढ़ी जिसके कारण कमीज़ों के *सामाजिक मूल्य* में कमी आयी। **लेकिन अगर उत्पादकता किसी एक या कुछेक पूँजीपतियों के कारखाने में बढ़ती है, तो उसका क्या नतीजा होगा?**

उसका नतीजा यह होगा कि उन विशिष्ट पूँजीपतियों को, जिनके कारखाने में उन्नत तकनोलॉजी व मशीन आदि के लगाये जाने के कारण उत्पादकता में बढ़ोत्तरी हुई है, अस्थायी **अतिरिक्त मुनाफ़ा (surplus profit)** प्राप्त होगा और उन्हें यह अतिरिक्त मुनाफ़ा तब तक हासिल होगा जब तक कि नयी तकनोलॉजी पूरे उद्योग के अधिकांश हिस्सों में नहीं अपना ली जाती। जो इस नयी तकनोलॉजी को नहीं अपनायेगा, उसे सापेक्षिक हानि तो होगी ही, उत्पादकता का अन्तर अधिक होने पर उसे निरपेक्ष हानि भी हो सकती है। ऐसे पूँजीपति जो उत्पादकता को बढ़ाने की इस होड़ में पीछे छूटते जायेंगे, वे कालान्तर में बरबाद हो जायेंगे क्योंकि वे बाज़ार में होन वाली कीमतों की प्रतिस्पर्द्धा में पिछड़ते जायेंगे। मिसाल के तौर पर, अगर दी गयी औसत सामाजिक उत्पादकता के स्तर पर एक निश्चित गुणवत्ता वाली एक कमीज़ का सामाजिक मूल्य 125 रुपये है, जबकि कुछ पूँजीपतियों ने आधुनिक तकनोलॉजी व मशीन का इस्तेमाल कर अपने कारखाने में श्रम की उत्पादकता को बढ़ाकर कमीज़ के उत्पादन की अपनी लागत को घटाया और अपने माल के वैयक्तिक मूल्य को घटाकर 76.25 रुपये कर लिया, तो क्या वह कमीज़ को अपने वैयक्तिक मूल्य पर बाज़ार में बेचेगा? नहीं। निश्चित तौर पर वह रु. 125 पर भी नहीं बेचेगा, बल्कि रुपये 120 या रुपये 115 पर बेचेगा, जिससे कि वह अपने प्रतिस्पर्द्धियों को बाज़ार में पीट सके। यदि वह अपने माल को रु. 76.25 पर बेचता तो उसे सामान्य मुनाफ़ा प्राप्त होता। लेकिन अपनी उत्पादकता में बढ़ोत्तरी के कारण यदि वह अपने माल को सामाजिक मूल्य, यानी रु. 125 से कम कीमत पर भी बेचेगा, मसलन रु. 120 पर, तो भी उसे करीब रु. 43.75 का बेशी मुनाफ़ा हासिल होगा। यह बेशी मुनाफ़ा उत्पादकता में बढ़ोत्तरी करने वाले इन चन्द पूँजीपतियों को एक उन्नत तकनोलॉजी पर अपने एकाधिकार के कारण प्राप्त होगा। यह बेशी मुनाफ़ा और कुछ नहीं बल्कि कम उत्पादक पूँजीपतियों के उत्पादन से होने वाले मूल्य के स्थानान्तरण से अधिक उत्पादक पूँजीपतियों को प्राप्त होगा। निश्चित ही, बेहतर तकनोलॉजी पर इजारेदारी किसी अधिक उपजाऊ ज़मीन पर इजारेदारी या उत्पादन की अन्य बेहतर प्राकृतिक स्थितियों पर इजारेदारी के समान स्थायी नहीं होगी और इसलिए उसे स्थायी बेशी मुनाफ़ा नहीं देगी। जैसे ही उन्नत तकनोलॉजी का उस विशिष्ट उद्योग में समाजीकरण हो जायेगा वैसे ही इन पूँजीपतियों का वह बेशी मुनाफ़ा जाता रहेगा और उन्हें वापस औसत मुनाफ़ा मिलने लगेगा।

यानी, श्रम की उत्पादकता बढ़ने की सूरत में क्या अन्तर आते हैं, इसके बारे में कुछ बातें ध्यान में रखना बेहद ज़रूरी है। **पहली बात** यह कि श्रमशक्ति का मूल्य घटाकर सापेक्षिक बेशी मूल्य को पूँजीपति वर्ग तभी बढ़ा सकता है, जबकि उन उद्योगों में श्रम की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी हो जो कि मज़दूरी-उत्पादों का उत्पादन करते हैं, या वे उद्योग जो मज़दूरी-उत्पादों का उत्पादन करने वाले उद्योगों को उत्पादन के साधनों की आपूर्ति करते हैं। यह मज़दूर के श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन में जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं की कीमत को घटा देता है और इस प्रकार श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन की लागत और इसलिए उसके मूल्य को घटा देता है। नतीजतन, मज़दूर अपनी श्रमशक्ति के बराबर मूल्य पहले से कम सामाजिक श्रमकाल में पैदा कर लेता है। इस प्रकार आवश्यक श्रमकाल घट जाता है और अतिरिक्त श्रमकाल बढ़ जाता है। अतिरिक्त श्रमकाल के सापेक्षिक रूप से बढ़ने के साथ पूँजीपति के बेशी मूल्य की मात्रा और दर में बढ़ोत्तरी होती है। इसी को सापेक्षिक बेशी मूल्य कहा जाता है।

दूसरी बात, अगर अन्य किसी भी उद्योग में औसत श्रम उत्पादकता बढ़ती है, तो इससे सापेक्षिक बेशी मूल्य में कोई बढ़ोत्तरी नहीं होती है, बल्कि उत्पाद का मूल्य पहले से कम हो जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि इस उद्योग के पूँजीपतियों के बेशी मूल्य में कोई कमी आती है। वजह यह है कि अन्य स्थितियाँ पहले के समान रहने की सूरत में कुल मूल्य पहले के जितना ही उत्पादित होता है और उसका बेशी मूल्य और मज़दूरी में बँटवारा भी पहले के समान ही होता है। बस फ़र्क यह होता है कि मूल्य की वही मात्रा उपयोग-मूल्यों की पहले से ज़्यादा मात्रा पर वितरित हो जाती है और नतीजतन प्रति इकाई मूल्य कम हो जाता है और माल सस्ता हो जाता है।

तीसरी बात, उपरोक्त स्थिति भी तभी पैदा हो सकती है कि जब समूचे उद्योग में औसत श्रम उत्पादकता में बढ़ोत्तरी हो क्योंकि मालों का सामाजिक मूल्य दिये गये सेक्टर में उत्पादन की औसत स्थितियों में परिवर्तन से ही प्रभावित होता है। यानी, यदि कोई एक या चन्देक पूँजीपति अपने कारखानों में श्रम की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी करने में कामयाब होते हैं, तो भी सामाजिक मूल्य समूचे उद्योग में उत्पादन की औसत सामाजिक स्थितियों से तय

(पेज 13 पर जारी)

सापेक्षिक बेशी मूल्य का उत्पादन

(पेज 12 से आगे)

होता है। नतीजतन, आधुनिकीकरण करने में कामयाब पूँजीपतियों को उन्नत तकनोलॉजी व मशीनों के बूते अपने कारखानों में श्रम उत्पादकता बढ़ाने के फलस्वरूप तब तक किसी न किसी मात्रा में बेशी मुनाफ़ा प्राप्त होता है जब तक कि यह उन्नत तकनोलॉजी समूचे उद्योग में समाजीकृत नहीं हो जाती, यानी अधिकांश पूँजीपतियों द्वारा नहीं अपना ली जाती।

उपरोक्त तीन बातों को न समझने के कारण कई बार मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों का विश्लेषण ग़लत नतीजों पर पहुँच जाता है। अब आगे बढ़ते हैं और सापेक्षिक बेशी मूल्य के पैदा होने की सामाजिक व ऐतिहासिक स्थितियों के बारे में विस्तार से बात करते हैं।

सबसे पहली बात जो समझने की आवश्यकता है वह यह है कि पूँजीवाद के विकास के साथ मज़दूर वर्ग का बेहतर जीवन व कार्य स्थितियों के लिए संघर्ष भी विकसित होता है। निरपेक्ष बेशी मूल्य को बढ़ाने की, यानी कार्यदिवस की लम्बाई को निरपेक्ष रूप से बढ़ाकर बेशी मूल्य को बढ़ाने की एक सीमा होती है। इसकी एक भौतिक सीमा भी होती है और एक वर्ग संघर्ष द्वारा उपस्थित सीमा भी होती है। इसलिए पूँजीवादी विकास की एक मंज़िल के बाद निरपेक्ष बेशी मूल्य गौण प्रवृत्ति बनता जाता है, जबकि सापेक्षिक बेशी मूल्य प्रधान प्रवृत्ति बनता जाता है। ऐसा नहीं है कि निरपेक्ष बेशी मूल्य को बढ़ाने की प्रक्रिया के पूरी तरह से समाप्त होने के बाद पूँजीपति वर्ग सापेक्षिक बेशी मूल्य के तरीके को अपनाता है। इतिहास में हम इन दोनों की तरीकों का एक साथ इस्तेमाल होते देखते हैं। सापेक्षिक बेशी मूल्य का तरीका पूँजीवाद के सामान्य सहकार की मंज़िल से फैक्ट्री व्यवस्था की मंज़िल तक विकास के साथ विकसित होता है। इसलिए इन ऐतिहासिक मंज़िलों को समझना अनिवार्य है।

सापेक्षिक बेशी मूल्य के पैदा होने की प्रक्रिया पूँजी के द्वारा **श्रम के वास्तविक मातहतीकरण (real subsumption of labour)** की ऐतिहासिक प्रक्रिया के ज़रिये उद्घाटित होती है। श्रम के वास्तविक मातहतीकरण का अर्थ होता है पूँजी द्वारा समूची उत्पादन और श्रम प्रक्रिया पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करना। पूँजीवाद के विकास की प्रक्रिया में श्रम का यह मातहतीकरण कई मंज़िलों से होकर गुज़रता है, जिसमें पूँजी कदम-दर-कदम उत्पादन व श्रम प्रक्रिया को अपने मातहत करती जाती है। 'पुटिंग आउट' व्यवस्था से ही उसके बीज पड़ जाते हैं जिसमें व्यापारिक पूँजीपति स्वतन्त्र माल उत्पादकों को अपने मातहत करता है और उत्पादन-सम्बन्धी निर्णय लेने लगता है। लेकिन इस मंज़िल में पूँजी ने श्रम की प्रक्रिया को अपने अधीन नहीं किया होता है और इसलिए उसने **श्रम का केवल औपचारिक मातहतीकरण (formal subsumption of labour)** ही किया होता है। इसके बाद, माल उत्पादकों के अपने उत्पादन के साधनों से वंचित होने की प्रक्रिया पूरी होती है और पूँजीपति श्रम की प्रक्रिया को प्रत्यक्ष तौर पर कदम-दर-कदम अपने मातहत करता जाता है।

इसमें पहली मंज़िल होती है **साधारण सहकार**। इसके बाद, **श्रम विभाजन व मैन्युफैक्चर** की मंज़िल आती है जो अन्ततः **कारखाना व्यवस्था** या **मशीनोफैक्चर** में परिणत होती है। इन तीनों ही मंज़िलों पर थोड़ा विस्तार से विचार करना आवश्यक है। इससे पहले यह इंगित करना ज़रूरी है कि ये ऐतिहासिक चरण है और चूँकि पूँजीवाद का विकास पूरी दुनिया के स्तर पर और एक देश के स्तर पर भी असमान प्रकृति का होता है, इसलिए आम तौर पर हम अधिकांश मामलों में इन अलग-अलग ऐतिहासिक चरणों को कालिक रूप में सह-अस्तित्व में देख सकते हैं। हालाँकि, पूँजीवाद के उत्तरोत्तर विकास के साथ इस सह-अस्तित्व में कारखाना व्यवस्था का अस्तित्व अधिक से अधिक प्रभावी होता जाता है।

साधारण सहकार

अलग-अलग उत्पादन कर रहे साधारण माल-उत्पादकों के स्थान पर जब कई उत्पादक साथ आकर काम करने की शुरुआत करते हैं और आपस में साधारण सहकार स्थापित करते हैं, तो यह श्रम की सामाजिक उत्पादक शक्ति को विचारणीय रूप से निर्बन्ध करता है। साधारण सहकार के साथ कई उत्पादक (जो अब उजरती मज़दूर में तब्दील हो चुके हैं) एक स्थान पर, एक छत के नीचे आ जाते हैं। हम सभी जानते हैं कि उत्पादन के पैमाने के विस्तारित होने के साथ उत्पादकता में बढ़ोत्तरी होती है। साथ ही श्रम की सामाजिक उत्पादक शक्तियाँ अब उन उत्पादक कार्यों को करना सम्भव बना देती हैं जिन्हें व्यक्तिगत स्तर पर अकेले काम कर रहे माल उत्पादकों द्वारा कर पाना सम्भव नहीं था। चूँकि यह पूँजी है जो कई भूतपूर्व माल उत्पादकों (जो कि अब उजरती मज़दूर बन चुके हैं) को एक उत्पादन स्थल पर लाती है इसलिए इसके नतीजे के तौर पर उत्पादक शक्तियों में होने वाली बढ़ोत्तरी पूँजी द्वारा लायी गयी बढ़ोत्तरी *प्रतीत* होती है। *ऐसा लगता है* कि यह पूँजी की देन है लेकिन वास्तव में यह श्रम की सामाजिक उत्पादक शक्तियाँ होती हैं।

लेकिन तकनीकी तौर पर साधारण सहकार अभी भी दस्तकारी पर ही आधारित होता है। साथ ही, इसमें अभी कोई व्यवस्थित तकनीकी श्रम विभाजन (technical division of labour) नहीं होता है। यानी, सभी मज़दूर हाथ से साधारण उपकरणों के साथ काम करते हैं और हर मज़दूर हर कार्य करता है। नतीजतन, अभी काम की लय और समयबद्धता मज़दूरों के द्वारा ही निर्धारित हो रही होती है और श्रम प्रक्रिया पर पूँजी का नियन्त्रण अधिक विकसित नहीं हुआ होता है। यह प्रक्रिया धीरे-धीरे अगले चरण में विकसित होती है। इस चरण में श्रम विभाजन की शुरुआत होती है और मैन्युफैक्चर की मंज़िल आती है।

मैन्युफैक्चर

मैन्युफैक्चर की मंज़िल की विशिष्टता होती है **सहकार के साथ श्रम विभाजन का मिश्रण**। यानी, मज़दूर अभी भी उत्पादन की प्रक्रिया में आपसी सहकार करते हैं, लेकिन अब यह साधारण सहकार नहीं होता है जिसमें सभी मज़दूर सभी काम कर लिया करते हैं। यह एक ऐसा सहकार होता है, जिसमें तकनीकी श्रम विभाजन का विकास हो चुका होता है। यानी, अब उत्पादन के अलग-अलग कार्यभार अलग-अलग मज़दूरों के समूहों को आबण्टित होते हैं और वे अलग-अलग समूह लगातार उन्हीं कार्यभारों को अंजाम देते रहते हैं। जैसा कि एडम स्मिथ ने उचित ही लिखा था, इसके साथ श्रम की उत्पादकता में भारी बढ़ोत्तरी होती है। समूची उत्पादन प्रक्रिया छोटे-छोटे अलग-अलग कार्यभारों में तोड़ दी जाती है। इन अलग-अलग कार्यभारों को अलग-अलग मज़दूरों के विशेषीकृत समूह अंजाम देते हैं। ये सभी समूह एक साथ ही काम करते रहते हैं। नतीजतन, कई चीज़ें होती हैं।

पहला तो यह कि ये अलग-अलग समूह उत्पादन के एक छोटे-से कार्य को बार-बार करते हुए उनमें निपुण हो जाते हैं और उनकी इस बढ़ी हुई कुशलता के कारण उत्पादकता में भारी बढ़ोत्तरी होती है। इसके अलावा, चूँकि माल के उत्पादन की समूची प्रक्रिया के अलग-अलग चरण अब बारी-बारी से नहीं चलते हैं, बल्कि एक साथ जारी रहते हैं, इसलिए एक चरण से दूसरे चरण में जाने में बरबाद होने वाला समय अब बरबाद नहीं होता है। इससे भी श्रम की सघनता व नतीजतन उत्पादकता में भारी बढ़ोत्तरी होती है। यह दीगर बात है कि इसके साथ, एडम स्मिथ के शब्दों में, मज़दूर "अहमक" बनता जाता है क्योंकि वह समूचे माल के उत्पादन की सभी प्रक्रियाओं में शामिल नहीं होता है, बल्कि किसी एक छोटे-से कार्यभार को दिन भर दुहराता रहता है। उसकी कुशलता बहुकुशलता से एकल-कुशलता में तब्दील हो जाती है। *जब भी पूँजी के मातहत श्रम विभाजन की प्रक्रिया घटित होती है तो वह इसी प्रकार अनमनीय होती है और मज़दूरों को व्यवस्थित तरीके से एकलकुशल व "अहमक" बनाती है।*

दूसरा, अब काम की लय और गति इस श्रम विभाजन से निर्धारित होती है और मज़दूरों का इस पर से नियन्त्रण कम होता जाता है। यही श्रम विभाजन यह भी तय करता है कि मज़दूरों के अलग-अलग समूहों को अलग-अलग उत्पादक कार्यभारों को पूरा करने के लिए किस अनुपात में बाँटा जाये और उसी के अनुसार अलग-अलग उत्पादन के साधनों को किन मात्राओं में ख़रीदा जाये। श्रम प्रक्रिया पर से मज़दूरों के नियन्त्रण को कम करके ही पूँजीपति समूची उत्पादन प्रक्रिया की क्रमबद्धता (sequentiality) और समकालिकता (simultaneity) को सुनिश्चित कर सकता है। यानी, समूची प्रक्रिया में माल उत्पादन पूँजीवादी उत्पादक प्रक्रिया की एक मंज़िल से दूसरी मंज़िल में जाता है, यानी वह मज़दूरों के एक समूह के श्रम के मातहत होता है और वह विशिष्ट कार्यभार पूरा होने के बाद वह मज़दूरों के दूसरे विशिष्ट समूह के श्रम के मातहत होने चला जाता है। यह प्रक्रिया की क्रमिकता है। लेकिन जब कोई भी माल उत्पादन की एक मंज़िल में होता है, तो दूसरा माल दूसरी मंज़िल में होता है, और तीसरा तीसरी मंज़िल में, आदि। यानी जब मज़दूरों का एक विशिष्ट समूह अपने विशिष्ट उत्पादक कार्यभार को पूरा कर रहा होता है, तो उसके आगे के मज़दूरों के विशिष्ट समूह इन्तज़ार नहीं कर रहे होते हैं, बल्कि वह उस माल में पर पहले ही काम कर रहे होते हैं, जो पहली मंज़िल से गुज़र चुका होता है। यानी सभी समूह एक साथ समकालिक तौर पर काम कर रहे होते हैं। यह मैन्युफैक्चर की प्रक्रिया की समकालिकता है।

मैन्युफैक्चर एक ओर दस्तकारी के कई रूपों को तोड़ता है, तो वहीं दस्तकारी के कुछ रूपों को साथ लाकर जोड़ भी देता है। इसके साथ ही, श्रम की उत्पादकता में गुणात्मक बढ़ोत्तरी होती है। श्रम का पूँजी के द्वारा मातहतीकरण एक नयी मंज़िल में पहुँच जाता है। *लेकिन यह बात भी नहीं भूलनी होगी कि इस मंज़िल में भी अभी उत्पादन का तकनोलॉजिकल आधार दस्तकारी ही होता है।* यानी मज़दूर श्रम विभाजन के साथ भी अभी, मूलतः और मुख्यतः, श्रम के साधारण उपकरणों से ही काम कर रहे होते हैं।

यहाँ यह स्पष्ट करना भी ज़रूरी है कि जब हम मैन्युफैक्चर के सन्दर्भों में या आगे चलकर उत्पादन की जगह होने वाले श्रम विभाजन की बात कर करते हैं, तो हम तकनीकी श्रम विभाजन की बात कर रहे हैं, न कि सामाजिक श्रम विभाजन की। सामाजिक श्रम विभाजन समाज में समूचे सामाजिक उत्पादन का अलग-अलग पूँजीवादी या गैर-पूँजीवादी माल उत्पादकों के बीच विभाजित होना है, जबकि तकनीकी श्रम विभाजन एक ही उत्पादक प्रक्रिया का अलग-अलग विशेषीकृत श्रमिकों के समूहों के बीच विशिष्ट उत्पादक कार्यों (particular productive tasks or details) के रूप में विभाजित होना है।

कारखाना व्यवस्था

पूँजीवादी उत्पादन तथा श्रम के पूँजी द्वारा मातहतीकरण के विकास की यह तीसरी मंज़िल मैन्युफैक्चर की मंज़िल से ही तार्किक रूप में विकसित होती है। जैसे-जैसे मैन्युफैक्चर विकसित होता है, उसमें श्रम विभाजन और भी आगे जाता है, विकसित होता है। उत्पादन की प्रक्रिया कालान्तर में बेहद छोटे-छोटे उत्पादक कार्यों में तोड़ दी जाती है, जिसे मज़दूर या मज़दूरों का एक विशिष्ट समूह अपने श्रम के उपकरण का उपयोग कर दुहराता रहता है। मसलन, कोई लगातार हथौड़ा चला रहा है, कोई लगातार रिंच कस रहा है, कोई लगातार बस रन्दा चलाये जा रहा है, कोई लगातार पेचकस घुमाये जा रहा है। *जब उत्पादक कार्यों को इतने छोटे-छोटे संघटक अंगों में तोड़ दिया जाता है, तो उनका स्वचालन आसान होता जाता है क्योंकि ये सारे उत्पादक कार्य बेहद सरल, साधारण व दुहराये जाने वाले कार्य बन जाते हैं।* इससे पहले उत्पादक प्रक्रिया का स्वचालन सम्भव नहीं होता है।

जब स्वचालन की मंज़िल की ये पूर्वशर्तें पूरी हो गयीं तो ऐतिहासिक तौर पर स्वचालन के लिए अलग-अलग प्रेरक शक्ति के स्रोतों का इस्तेमाल किया गया। एक दौर में इसके लिए पशुओं की शक्ति का इस्तेमाल किया गया, जिसमें श्रम के उपकरणों को उत्पादन की प्रक्रिया के विशिष्ट कार्यभारों (tasks or details) के लिए एक ख़ास तरीके से व्यवस्थित किया गया होता था और उपकरणों की उस व्यवस्था को पशुओं की शक्ति से चलाया जाता था। एक अन्य दौर में प्राकृतिक शक्तियों का इस्तेमाल प्रमुखता ग्रहण करता गया। मसलन, वायु शक्ति, जल शक्ति आदि का। विशेष तौर पर, नदियों व जल के अन्य स्रोतों की धाराओं से प्राप्त ऊर्जा का इस्तेमाल तमाम कारखानों या मिलों को चलाने के लिए काफ़ी इस्तेमाल किया जाने लगा। यही कारण है कि एक दौर में अधिकांश मिलें नदियों या अन्य जल स्रोतों के किनारों पर हुआ करती थीं।

लेकिन पशुओं के पेशीय बल पर निर्भर करने या प्राकृतिक शक्तियों पर निर्भर करने की अपनी सीमाएँ थीं। जब स्वचालन के लिए इन प्रेरक शक्ति के स्रोतों का इस्तेमाल किया जाता था, तो उनकी गति, उनकी कार्रवाई और उनकी लय व समयबद्धता पर मनुष्य का कोई नियन्त्रण नहीं था, या बेहद सीमित नियन्त्रण था। पशुओं या प्रकृति की अनियमितता पर निर्भर रहना उत्पादन की कार्रवाई को निश्चित ही प्रभावित करता था। इसलिए प्रेरक शक्ति के किसी ऐसे स्रोत की आवश्यकता थी, जिस पर इंसान का नियन्त्रण हो, उसकी गति, लय व समयबद्धता को वह अपने अनुसार निर्धारित कर सकता हो।

इसी आवश्यकता के सन्दर्भ में औद्योगिक क्रान्ति व वैज्ञानिक क्रान्ति की ज़मीन तैयार हुई थी। वे निश्चय ही महान आविष्कारकों की मेधा से हुए आविष्कारों से परिणत हुईं। लेकिन ये महान आविष्कारक भी किसी निर्वात या शून्य में अस्तित्वमान नहीं थे। वे अपने आविष्कारों की परिकल्पना कर पाये, उन्हें व्यवहार में उतारने की सामग्री अर्जित कर सके और उन्हें व्यवहार में उतारने की प्रक्रिया को समझ पाये, इसके पीछे वास्तव में श्रम की शक्तियाँ थीं, उत्पादन की समूची प्रक्रिया थी और इन्हें चलाने वाला मज़दूर वर्ग था। **मज़दूर वर्ग द्वारा उत्पादक कार्रवाई के बुनियादी व्यवहार में संचित ज्ञान और अनुभव के बिना कोई मेधावी से मेधावी आविष्कारक भी वैज्ञानिक सामान्यीकरण कर वे आविष्कार नहीं कर पाता जिनके बूते पर औद्योगिक क्रान्ति सम्भव हुई।** उत्पादक शक्तियों में लगने वाली यह छलाँग मज़दूर वर्ग के सामाजिक उत्पादक व्यवहार के बूते ही सम्भव हुई।

बहरहाल, जब भाप के इंजन का आविष्कार हुआ तो स्वचालन की किसी ऐसी प्रेरक शक्ति के स्रोत की खोज पूरी हुई, जिस पर मनुष्य का नियन्त्रण हो। भाप के इंजन के आविष्कार और अन्य कई ऐसे आविष्कारों के पीछे श्रम प्रक्रिया, उत्पादक शक्तियों के विकास और मज़दूर वर्ग का क्या योगदान था,

(पेज 14 पर जारी)

सापेक्षिक बेशी मूल्य का उत्पादन

(पेज 13 से आगे)

यह अपने आप में लम्बी चर्चा का विषय है, जिसमें हम यहाँ नहीं जा सकते। लेकिन रुचि रखने वाले पाठक इसके बारे में विस्तार से जानने के लिए विज्ञान के इतिहास पर उत्कृष्ट कार्य करने वाले कई मार्क्सवादी लेखकों को पढ़ सकते हैं, मसलन, जे. डी. बरनाल और जे. बी. एस. हाल्डेन।

बहरहाल, प्रेरक शक्ति के एक ऐसे स्रोत की खोज के साथ मशीनीकरण और कारखाना व्यवस्था के उदय की सभी पूर्वशर्तें पूरी हो गयीं। जैसा कि हम देख सकते हैं कि कारखाना व्यवस्था के उदय में प्रमुख भूमिका **मशीन** की होती है। मशीन के **तीन बुनियादी अंग** होते हैं। पहला है **प्रेरक शक्ति (motive power)**, या *सेण्ट्रल ऑटोमेटॉन*, यानी शक्ति का वह स्रोत जो उपकरणों की समूची व्यवस्था को चलाता है। दूसरा है **सम्प्रेषक तंत्र (conveying or transmission system)** यानी प्रेरक शक्ति से उपकरणों की व्यवस्था को शक्ति पहुँचाने वाली व्यवस्था। और तीसरा है मुख्य **मशीन उपकरण का हिस्सा (machine-tool part)**, यानी मशीन का वह हिस्सा जो उपकरणों के एक तन्त्र या व्यवस्था का निर्माण करता है। हम उन्नत से उन्नत मशीनों में जब उपकरणों के तन्त्र को, यानी इस तीसरे हिस्से को देखते हैं, तो हम उसमें सभी बुनियादी पुराने उपकरणों को देख सकते हैं, मसलन, हथौड़ा, आरी, रन्दा, पेचकस, रिंच, इत्यादि। निश्चित ही, एक ताकतवर प्रेरक शक्ति वाली मशीन में ये उपकरण विशालकाय रूप धारण कर लेते हैं, जैसे कि प्रेस मशीन में जो विशालकाय उपकरण प्रेस करने का काम करता है, वह और कुछ नहीं बल्कि हथौड़े का ही एक विशालकाय रूप है, जो उपकरणों के तन्त्र में व्यवस्थित है।

कारखाना-व्यवस्था के उदय के परिणाम

मशीन के आने के साथ श्रम की उत्पादकता में भारी बढ़ोत्तरी होती है। लेकिन साथ ही मज़दूर अब श्रम प्रक्रिया से पूर्ण रूप में नियन्त्रण खो देता है। मैन्युफैक्चरिंग की मंज़िल तक अभी मनुष्य उपकरणों का इस्तेमाल कर रहा था और उपकरण मानवीय अंगों का ही विस्तार थे। लेकिन मशीन के आगमन के साथ स्वयं उत्पादक यानी मज़दूर मशीन का एक विस्तार बन जाता है। अब मशीन की लय और गति मज़दूरों के काम करने की लय व गति को निर्धारित करती है। ज़ाहिर है, मशीन की गति और लय को पूँजीपति तय करता है। जब मशीन का आगमन हुआ तो मज़दूर वर्ग ने, जो कि अभी अपनी शैशवावस्था में ही था, मशीन को अपने दुश्मन के तौर पर देखा। अभी मज़दूर वर्ग की चेतना निम्न स्तर पर थी। उसे लगता था कि यह मशीन है जो उसे काम से बाहर कर रही है और उसके भयंकर शोषण के लिए ज़िम्मेदार है। इस दौर में मज़दूरों ने मशीनों को तोड़ने आदि के रूप में अपना प्रतिरोध दर्ज़ कराया। लेकिन एक प्रक्रिया में मज़दूर वर्ग ने यह समझा कि यह स्वयं मशीन नहीं है, जो उसकी शत्रु है, बल्कि यह पूँजी और पूँजीपति वर्ग है जो उसका शत्रु है।

मशीन वैसे तो एक मेहनत को कम करने वाली चीज़ होती है, क्योंकि मशीन के साथ मज़दूर वर्ग के लिए उत्पादन की प्रक्रिया ठोस तौर पर देखें तो उतनी श्रमसाध्य नहीं रह जाती है। लेकिन जब मशीनें पूँजी के नियन्त्रण में होती हैं, तो वे मेहनत को कम करने के बजाय मेहनत को बढ़ाती हैं।

इसकी एक वजह यह होती है कि मशीनों की श्रम प्रक्रिया में तो घिसाई होती ही है, लेकिन जब उत्पादन नहीं हो रहा होता और मशीनें यूँ ही खड़ी होती हैं, तो भी प्राकृतिक शक्तियों के कारण उनकी घिसाई व टूट-फूट होती है। हर पूँजीपति चाहता है कि मशीन अधिक से अधिक समय केवल और केवल श्रम प्रक्रिया और उत्पादन प्रक्रिया में ही घिसे क्योंकि इस प्रक्रिया में मशीन का मूल्य माल के मूल्य में स्थानान्तरित होता है। जबकि प्राकृतिक शक्तियों द्वारा होने वाले ह्रास के कारण मशीन का मूल्य नष्ट होता है। इसलिए पूँजीपतियों ने मशीन के आगमन के साथ काम के घण्टों को और ज़्यादा बढ़ाया और औद्योगिक क्रान्ति जब ज़ोरों पर थी, तो कार्यदिवस की लम्बाई 14 से 16 घण्टों तक भी पहुँच गयी। इसी दौर में रात्रि शिफ्ट के काम की भी बड़े पैमाने पर शुरुआत हुई। रात का काम मज़दूर वर्ग के शरीर और सेहत को विशेष तौर पर नुकसान पहुँचाता है। विशेषकर, रात में काम करने वाले मज़दूरों की विशिष्ट आवश्यकताओं को यदि न पूरा किया जाय, तो यह उनके लिए विनाशकारी हो सकता है। उन्नीसवीं सदी के पूरे दौर में यूरोप के उन्नत पूँजीवादी देशों में रात की शिफ्ट के काम के भयंकर नतीजे सामने आये। मज़दूर वर्ग ने इनके खिलाफ़ भी पुरजोर संघर्ष किया। नतीजतन, तमाम सरकारों को उन्नीसवीं सदी के दौरान ही रात्रि कार्य का भी लगातार कई बार विनियमन करना पड़ा।

साथ ही, मशीन के आने के साथ मनुष्य के पेशीय बल की भूमिका पहले के मुकाबले काफ़ी कम हो गयी। अब कुछ लीवरों को खींचने और बटनों को दबाने से काम हो जाता था। इसका यह अर्थ नहीं था कि इसमें मज़दूरों के श्रम की भूमिका समाप्त हो गयी। क्योंकि मशीनों को भी हमेशा मज़दूरों के पर्यवेक्षण में ही काम करना पड़ता है, अन्यथा वे निरन्तरता के साथ काम कर ही नहीं सकती हैं। उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान उनकी मरम्मत, देख-रेख और उनके प्रचालन की निरन्तरता को सुनिश्चित करने के लिए त्रुटियों के निवारण की आवश्यकता पड़ती है। हर मज़दूर इस बात को जानता है। लेकिन मैन्युफैक्चरिंग के दौर की तुलना में यह अन्तर अवश्य आता है कि अब शुद्ध पेशीय बल की भूमिका कम हो जाती है, क्योंकि मज़दूर अपने हाथों से उपकरणों का प्रयोग नहीं कर रहा होता। इसके साथ पूँजीपति वर्ग के सामने एक और लाभदायक सम्भावना पैदा हुई। यह था स्त्रियों और बच्चों के श्रम का पूँजीवादी समाजीकरण और पूँजीवादी उत्पादन में बेशी मूल्य पैदा करने के लिए उसका इस्तेमाल करना। स्त्रियों और बच्चों का श्रम सस्ता था। इसलिए पूँजीपति वर्ग ने इस दौर में बड़े पैमाने पर उसके इस्तेमाल की शुरुआत की।

औद्योगिक क्रान्ति के शुरू होने के बाद से लेकर उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक औरतों और बच्चों के श्रम का जो अमानवीय शोषण पूँजीपति वर्ग ने किया वह तमाम उपन्यासों और कलात्मक रचनाओं का विषय बना, समाज में आम तौर पर इसके प्रति गहरा असन्तोष पैदा हुआ और मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के एक हिस्से ने, मसलन, सरकारी डॉक्टरों, वकीलों व सामाजिक कार्यकर्ताओं व अर्थशास्त्रियों तक ने इसको विनियमित करने की माँग उठानी शुरू की। उन्नीसवीं सदी में ही पूँजीवादी सरकारों को विशेषकर ब्रिटेन व फ्रांस में बच्चों और औरतों के श्रम के पूँजीपतियों द्वारा शोषण को विनियमित करने की शुरुआत करनी पड़ी। लेकिन इसके पीछे सबसे बड़ा कारण था स्वयं विराट बन चुके सर्वहारा वर्ग का वर्ग संघर्ष जो लगातार कार्यदिवस की लम्बाई को कम करने, सुरक्षा उपकरणों व अन्य कार्य-स्थितियों को बेहतर बनाने के लिए चल रहा था। वह संघर्ष आज भी जारी है क्योंकि पूँजीपति वर्ग भी लगातार नये तौर-तरीकों से उन हक़ों को छीनने का प्रयास करता रहता है, जो उसने तमाम लड़ाइयों और कुर्बानियों के बाद अर्जित किये हैं। 1970 के दशक में नवउदारवाद की नीतियों की शुरुआत के साथ पूँजीपति वर्ग ने मज़दूर वर्ग द्वारा डेढ़ सदी में अर्जित तमाम हक़ों को छीनना शुरू किया। अनौपचारिकीकरण के ज़रिये मज़दूरों की नौकरी की सुरक्षा, आठ घण्टे के कार्यदिवस, सुरक्षा के इन्तज़ामात, साप्ताहिक छुट्टी, सामाजिक व आर्थिक सुरक्षा के अधिकारों को छीन लिया है। मज़दूर वर्ग नये सिरे से उसके लिए संघर्ष कर रहा है।

मशीनों के आने के साथ न सिर्फ कार्यदिवस पहले से लम्बा हो गया बल्कि श्रम की सघनता में भी भारी बढ़ोत्तरी हुई। वजह यह थी कि अब उत्पादन प्रक्रिया में मौजूद छोटे-छोटे अन्तराल अब न्यूनातिन्यून होते जाते हैं। मज़दूर मशीन का विस्तार बन जाता है और निरन्तर काम करता रहता है। नतीजतन, पूँजीवाद के दौर में मशीन मज़दूर के काम को आसान बनाने की जगह उसे ज़्यादा श्रमसाध्य, थकाऊ और लम्बा बनाती है। केवल एक समाजवादी व्यवस्था में मशीनीकरण वास्तव में मज़दूर वर्ग के काम को अधिक से अधिक आसान, सुगम और छोटा बना सकती है। उस समय मशीन की गति और लय पर नियन्त्रण किसी शत्रु वर्ग का नहीं होता है, बल्कि स्वयं मज़दूर वर्ग का होता है। मज़दूर वर्ग के अलगाव के समाप्त होने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है और यदि वह सफलतापूर्वक आगे बढ़ती है तो मशीनीकरण और उत्पादक शक्तियों में होने वाली हर तरक्की मज़दूर वर्ग के जीवन स्थितियों और कार्यस्थितियों को पहले से बेहतर बनाती जाती है। लेकिन पूँजीवाद में इसका ठीक उल्टा होता है, जैसा कि आज हम अपने चारों ओर देख सकते हैं।

मशीन के आने के साथ एक अन्य बड़ा परिवर्तन होता है, मज़दूरों के बीच बेरोज़गार मज़दूरों की रिज़र्व सेना के आकार में तेज़ी से बढ़ोत्तरी। मशीन श्रम की उत्पादकता में गुणात्मक और अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी करती है। नतीजतन, मशीनें बड़े पैमाने पर मज़दूरों को विस्थापित करती हैं। इसका यह अर्थ नहीं होता कि मशीनें हमेशा बेरोज़गारी को बढ़ाती ही हैं। यदि मुनाफ़े की दर ज़्यादा हो, तो पूँजीपति वर्ग उत्पादन का इतना विस्तार कर सकता है कि मशीनों द्वारा विस्थापित मज़दूरों को पूर्णत: या आंशिक रूप में वापस काम पर लगा दे। लेकिन ऐसा केवल तभी होता है जब मुनाफ़े की दर अधिक हो और विस्तारित पुनरुत्पादन की दर मशीनों द्वारा मज़दूरों के विस्थापन की दर के बराबर या उससे ज़्यादा हो। अन्यथा, निरपेक्ष रूप में, मशीनें निश्चय ही मज़दूरों को विस्थापित करती हैं। पूँजी संचय की गति पर यह निर्भर करता है कि इसके बावजूद बेरोज़गारी बढ़ेगी, या स्थिर रहेगी या घटेगी। लम्बी दूरी में बेरोज़गार मज़दूरों की रिज़र्व आर्मी निरपेक्ष अर्थों में बढ़ती ही है।

लेकिन पूँजीपतियों के टट्टू कलमघसीटों ने मशीनों द्वारा मज़दूरों के विस्थापन की परिघटना पर यह दावा किया कि इससे पूँजी "मुक्त" होती है और "मुक्त" हुई पूँजी फिर से निवेश में जाती है और इस प्रकार वह निकाले गये मज़दूरों को फिर से काम पर रख लेती है। लेकिन मार्क्स ने बताया कि वास्तव में ऐसा नहीं होता है। मशीनीकरण से मुक्त हुई जो नयी पूँजी उत्पादन में लगती है, वह पुरानी पूँजी-सघनता (मशीन-मज़दूर अनुपात) के साथ नहीं निवेश की जाती है, बल्कि नयी पूँजी-सघनता के साथ निवेश की जाती है। इसलिए मशीनों के लगने के कारण जो पूँजी मज़दूरों को मज़दूरी देने के लिए होने वाले निवेश से मुक्त या स्वतन्त्र होती है, वह फिर से निवेशित होने पर उतने ही मज़दूरों को आम तौर पर काम पर नहीं रखती। मशीनीकरण के बाद निश्चय ही उत्पादन के पैमाने और उसकी मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है, उत्पादन के साधनों, जैसे कि मशीनों व कच्चे माल की माँग बढ़ती है और मज़दूरों के रोज़गार में मशीनों के लगने के बावजूद वृद्धि केवल तभी हो सकती है, जबकि कुल पूँजी निवेश ही मुनाफ़े की बेहतर औसत दर के कारण इतना हो कि उत्पादन का निरपेक्ष रूप से इस हद तक विस्तार हो कि वह मशीनों द्वारा मज़दूरों के विस्थापन से ज़्यादा हो। मार्क्स ने पूँजीवाद के समर्थन में दिये गये इन कुतर्कों को तथ्यों और तर्कों के आधार पर ख़ारिज किया।

जैसा कि हम देख सकते हैं, सापेक्षिक बेशी मूल्य का सम्बन्ध सीधे तौर पर श्रम की उत्पादकता को बढ़ाने से है। श्रम की उत्पादकता आम तौर पर तकनोलॉजिकल सुधार के साथ, यानी उन्नत तकनोलॉजी व मशीनों को लगाने से बढ़ती है। लेकिन यही चीज़ मज़दूरों को काम से विस्थापित भी करती है। नतीजतन, एक लम्बी उथल-पुथल भरी प्रक्रिया में बेरोज़गारों की रिज़र्व सेना का भी विस्तार होता है। निश्चित तौर पर, इसके साथ निरपेक्ष रूप में रोज़गारशुदा मज़दूरों की संख्या भी बढ़ सकती है। कितने मज़दूर काम से बाहर हो रहे हैं, कितने वापस उद्योगों द्वारा काम पर लिये जा रहे हैं और कुल मिलाकर श्रम की सक्रिय सेना व श्रम की रिज़र्व सेना के अनुपात पर उसका क्या असर पड़ता है, यह बात **औद्योगिक चक्र (industrial cycle)** से निर्धारित होती है।

तकनोलॉजिकल उन्नति के दौरों में मज़दूर काम से बाहर किये जाते हैं; लेकिन मुनाफ़े की औसत दर के पर्याप्त मात्रा में बढ़ने पर निवेश की दर बढ़ती है और फिर विकर्षित किये गये मज़दूर उद्योगों द्वारा फिर से आकर्षित किये जाते हैं। तकनोलॉजिकल ठहराव के दौरों में मुनाफ़े की औसत दर के स्वस्थ होने की स्थिति में भी मज़दूरों का इस प्रकार उद्योगों द्वारा सोखा जाना जारी रहता है, क्योंकि विस्तारित पुनरुत्पादन होता रहता है। लेकिन आपसी प्रतिस्पर्द्धा और मज़दूर वर्ग का वर्ग संघर्ष लगातार पूँजीपतियों को उन्नत से उन्नत तकनोलॉजी और मशीनें लाने पर मजबूर करता है। नतीजतन, तकनोलॉजिकल नवोन्मेष एक बार फिर से मज़दूरों के विस्थापन का कारण बनता है। साथ ही, यह मुनाफ़े की औसत दर में गिरावट का कारण भी बनता है क्योंकि इसके साथ पूँजी-श्रम अनुपात बढ़ता जाता है और चूँकि नया जीवित श्रम ही नया मूल्य पैदा करता है, इसलिए मुनाफ़े की औसत दर एक प्रवृत्ति के रूप में गिरती है। इसे हम आगे के अध्यायों में विस्तार से समझेंगे कि यह क्यों और कैसे होता है। *अभी इतना समझ लेना ज़रूरी है कि श्रम की उत्पादकता को बढ़ाकर सापेक्षिक बेशी मूल्य बढ़ाने के लिए जिन तरीकों का पूँजीपति वर्ग इस्तेमाल करता है, ठीक उन्हीं के कारण लम्बे दौर में मुनाफ़े की औसत दर में गिरने की प्रवृत्ति होती है।* जब मुनाफ़े की औसत दर गिरती जाती है, तो वह अपने आपको सामान्य अतिउत्पादन व पूँजी के प्राचुर्य के रूप में प्रकट करती है। यह अतिउत्पादन सर्वप्रथम उत्पादन के साधनों का अतिउत्पादन होता है। मुनाफ़े की औसत दर के गिरने के फलस्वरूप निवेश की दर में गिरावट आती है। निवेश की दर गिरने के साथ पूँजीपतियों के बीच की आपसी ख़रीदारी में कमी आती है, जिसका सर्वाधिक बड़ा हिस्सा उत्पादन के साधनों की ख़रीद होता है। नतीजतन, उत्पादन के साधनों का अतिउत्पादन प्रकट होता है। निवेश की दर गिरने के साथ बेरोज़गारी भी बढ़ती है, आम मेहनतकश आबादी की औसत आय में कमी आती है और नतीजतन उनका औसत उपभोग भी कम होता है। परिणामत:, उपभोग के साधनों का अतिउत्पादन भी प्रकट होता है और आम तौर पर अतिउत्पादन की परिघटना प्रकट होती है। लेकिन इसके पीछे सापेक्षिक बेशी मूल्य को बढ़ाने के लिए पूँजीपति वर्ग द्वारा अपनाये गये तौर-तरीके होते हैं, जिनके कारण पूँजी-श्रम अनुपात या जिसे हम पूँजी का आवयविक संघटन कहते हैं, वह

(पेज 8 पर जारी)

फ़्रेडरिक एंगेल्स की स्मृति में (जन्मतिथि : 28 नवम्बर, 1820)

सागर जैसा हृदय, आलोकित शिखरों जैसी मेधा, तूफ़ानों जैसा जीवन

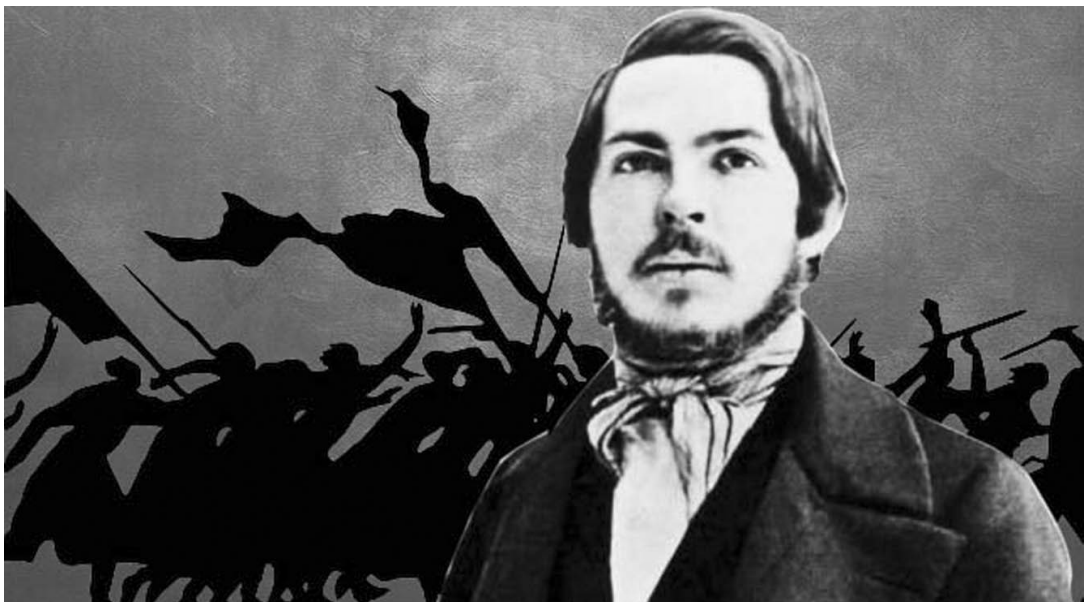

● कविता कृष्णपल्लवी

28 नवम्बर कार्ल मार्क्स के अनन्य मित्र फ्रेडरिक एंगेल्स का जन्मदिन है। वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के सिद्धान्त – द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद का प्रणयन करने में वे कार्ल मार्क्स के अनन्य सहयोगी थे। आधुनिक सर्वहारा के महान शिक्षकों में कार्ल मार्क्स के बाद उनका ही नाम आता है।

फ्रेडरिक एंगेल्स का जब 5 अगस्त 1895 को लन्दन में देहान्त हुआ था तो लेनिन ने उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए कवि नेक्रासोव की ये पंक्तियाँ उद्धृत की थीं: "तर्क की कैसी मशाल बुझ गयी, कैसा हृदय हो गया स्पन्दनहीन!" लेनिन के ही शब्दों में, "कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स को जिस समय नियति ने साथ ला दिया उसके बाद से इन दोनों मित्रों ने अपना सारा जीवन एक ही सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अर्पित कर दिया।"

28 नवम्बर, 1820 को एंगेल्स जर्मनी के राइन प्रदेश के बार्मेन नगर में एक कारख़ानेदार के घर पैदा हुए। मार्क्स की ही भाँति युवावस्था में एंगेल्स भी हेगेल की दर्शन की ओर आकृष्ट हुए और फिर तरुण हेगेलपन्थियों के वामपक्ष में शामिल हुए। उस ज़माने के सबसे विकसित पूँजीवादी देश इंग्लैण्ड में मतभेदी पिता की फ़र्म में मुलाज़मत करते हुए एंगेल्स वहाँ के मज़दूर वर्ग के जीवन के निकट सम्पर्क में आये और पूँजीवादी उद्योगों की कार्यविधि का अध्ययन करने का उन्हें अवसर मिला। सुप्रसिद्ध चार्टिस्ट आन्दोलन के भी निकट सम्पर्क में रहे। इस अनुभव का परिणाम दो कृतियों के रूप में सामने आया: 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास' (1844) और 'इंगलैण्ड में मज़दूर वर्ग की दशा'(1845)। इन कृतियों में वैज्ञानिक भौतिकवादी आर्थिक विश्लेषण और सर्वहारा वर्ग के ऐतिहासिक मिशन की सैद्धान्तिक नींव फ्रेडरिक एंगेल्स रखने लगे थे। तब तक मार्क्स भी अपने प्रारम्भिक अध्ययन और लेखन में हेगेलीय भाववाद और फ़ायरबाख़ीय यान्त्रिक भौतिकवाद से टकराते हुए तथा पूँजीवादी समाज की गतिकी का अध्ययन करते हुए '1844 की दार्शनिक-आर्थिक पाण्डुलिपियाँ' लिखने के मुकाम तक पहुँच चुके थे।

1844 में पेरिस में मार्क्स और एंगेल्स की मुलाकात हुई। यह दो युगप्रवर्तक व्यक्तित्वों का ऐतिहासिक, अनन्य मित्रता की शुरुआत थी, इसकी नींव में उनके एकसमान विचार थे और पूँजीवादी दासता से सर्वहारा मुक्ति का वैचारिक संघर्ष था। इस महान मैत्री के बारे में लेनिन ने लिखा है: "प्राचीन इतिहास में मित्रता के कितने ही हृदयस्पर्शी उदाहरण मिलते हैं। यूरोपीय सर्वहारा वर्ग कह सकता है कि उसके विज्ञान की रचना दो ऐसे विद्वानों और योद्धाओं ने की है जिनके पारस्परिक सम्बन्धों ने प्राचीन लोगों की मानवीय मैत्री की सर्वाधिक हृदयस्पर्शी गाथाओं को भी पीछे छोड़ दिया है।"

एंगेल्स की गहन भावप्रवणता और सहृदयता के बारे में लेनिन ने लिखा है: "एंगेल्स सदा ही – और आम तौर से, बिल्कुल सही ही – अपने को मार्क्स के बाद रखते थे। अपने एक पुराने मित्र को उन्होंने लिखा था, 'मार्क्स के जीवनकाल में मैं हमेशा पूरक की भूमिका अदा करता था,' जीवित मार्क्स के प्रति उनका प्रेम और मृत मार्क्स के प्रति उनका सम्मान-भाव निस्सीम था। इस दृढ़ योद्धा और कठोर विचारक के अन्दर एक अत्यन्त प्रेमी आत्मा निवास करती थी।"

1844-46 के बीच मार्क्स और एंगेल्स ने एक साथ मिलकर 'पवित्र परिवार' और 'जर्मन विचारधारा' शीर्षक कृतियाँ लिखीं, जिनमें हेगेल और फ़ायरबाख़ के दार्शनिक विचारों की आलोचनात्मक पुनर्व्याख्या करते हुए द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद के विकास के प्रारम्भिक मंज़िल पूरी की गयी थी। 1847 में एंगेल्स ने कम्युनिस्ट लीग के कार्यक्रम का एक मसौदा 'कम्युनिज़्म के सिद्धान्त' के रूप में तैयार किया। इसी आधार पर आगे चलकर मार्क्स ने और उन्होंने 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' (1848) लिखा। 1848-49 में एंगेल्स ने जर्मनी में क्रान्तिकारी सैनिकों की ओर से युद्ध में प्रत्यक्षत: हिस्सा लिया। इसके बाद के प्रवासकाल के वर्षों में 'जर्मनी में किसान युद्ध' और 'जर्मनी में क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति' नामक पुस्तकें लिखकर जर्मन क्रान्ति के अनुभवों का सामान्यीकरण करते हुए बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति में मज़दूर किसान संश्रय की अवधारणा रखी तथा बुर्जुआ वर्ग की ग़द्दारी को उजागर किया।

इस समय तक मार्क्स इंग्लैण्ड में बस गये थे। एंगेल्स भी वहीं पहुँच गये। वहाँ दोनों ने पहले इण्टरनेशनल की स्थापना में अग्रणी भूमिका निभाई तथा मज़दूर आन्दोलन में व्याप्त निम्नपूँजीवादी अवसरवादी और अराजकतावादी विचारों के विरुद्ध तीखा संघर्ष चलाया। 1850 के दशक से लेकर 1870 तक एंगेल्स मैंचेस्टर में अपनी पहले वाली व्यावसायिक फ़र्म में ही नौकरी करते हुए लन्दन में लगातार अभावों में जी रहे मार्क्स के परिवार को आर्थिक मदद भेजते रहे। हर रोज़ लिखे जाने वाले लम्बे पत्रों द्वारा दोनों मित्र आपस में जीवन्त बौद्धिक सम्बन्ध बनाये रहे। यह एंगेल्स की बेमिसाल क़ुर्बानी भरी आर्थिक मदद थी, जिसके चलते मार्क्स और उनका परिवार जीवित रहा और 'पूँजी' के लेखन का महाउद्यम सम्पन्न होना सम्भव हो सका। 1870 तक एंगेल्स लन्दन आ गये और फिर दोनों मित्रों का बेहद श्रमसाध्य संयुक्त बौद्धिक जीवन 1883 में मार्क्स का निधन होने तक लगातार चलता रहा।

इस दौरान मार्क्स की 'पूँजी' खण्ड-एक की तैयारी, प्रकाशन और उसपर होने वाली बहसों में भागीदारी के अतिरिक्त एंगेल्स की भी कई छोटी-बड़ी रचनाएँ प्रकाशित हुईं। मार्क्स ने मुख्यत: अपना समय पूँजीवादी अर्थतन्त्र की जटिल संरचना एवं कार्यविधि को समझने में लगाया। एंगेल्स ने प्राय: अपना ज्यादा समय खण्डन-मण्डनात्मक शैली या सीधी-सादी भाषा में अतीत और वर्तमान के विविध प्रश्नों पर ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करने और मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्तों को व्याख्यायित करने में लगाया।

मार्क्स की मृत्यु ने 'पूँजी' की महाकाय परियोजना को अन्तिम रूप नहीं लेने दिया। मार्क्स अपने पीछे पूँजी खण्ड-2, खण्ड-3 और खण्ड-4 (जो चार खण्डों में 'थियरीज़ ऑफ सरप्लस वैल्यू' नाम से प्रकाशित है) की पाण्डुलिपियों का अम्बार छोड़ गये। एंगेल्स ने अपने मित्र की अमूल्य धरोहर के सम्पादन-प्रकाशन में अपना जीवन झोंक दिया। अन्तिम साँस तक बिस्तर पर लेटे हुए भी वे यह काम करते रहे। 1885 में 'पूँजी' का दूसरा खण्ड और 1894 में तीसरा खण्ड प्रकाशित हुआ। आस्ट्रियाई सामाजिक जनवादी नेता एडलर ने बिल्कुल ठीक कहा था कि पूँजी के दूसरे-तीसरे खण्ड को प्रकाशित करके उस महान प्रतिभाशाली व्यक्ति की याद में, जो उनका मित्र था, एंगेल्स ने एक भव्य स्मारक खड़ा कर दिया था। एक ऐसा स्मारक जिसपर न चाहते हुए भी अपना नाम भी अमिट रूप से अंकित कर दिया है। सच पूछें तो 'पूँजी' के बाद के दो खण्ड मार्क्स और एंगेल्स दोनों की रचना है, हालाँकि एंगेल्स ने खुद स्पष्ट किया था कि उन्होंने मार्क्स की पाण्डुलिपियों में कोई भी जोड़-घटाव नहीं किया था और बिखरी हुई जटिल पाण्डुलिपियों को व्यवस्थित करने और उनका एक पुस्तक के रूप में सम्पादन करने से अधिक उन्होंने कुछ नहीं किया था। चौथे खण्ड की पाण्डुलिपियों का सम्पादन एंगेल्स के निधन के कारण रुक गया। उनका सम्पादन कार्ल काउत्स्की ने किया, जिसमें कुछ त्रुटियाँ-कमियाँ और अवांछित व्याख्याएँ भी थीं। इन्हें डेविड रियाज़ानोव के निदेशक रहते मास्को स्थित 'मार्क्स-एंगेल्स अध्ययन संस्थान' ने पुन:सम्पादित किया और प्रकाशित किया।

मार्क्सवादी दर्शन में एंगेल्स का अपना योगदान विशाल है। 'लुडविग फायरबाख़ और क्लासिकी जर्मन दर्शन का अन्त', 'ड्यूहरिंग मत-खण्डन', 'प्रकृति की द्वंद्वात्मकता' तथा 'परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्यसत्ता की उत्पत्ति' जैसी कृतियाँ मार्क्सवादी दर्शन और ऐतिहासिक भौतिकवाद के सार एवं महत्व की क्लासिकी प्रस्तुतियाँ हैं। एंगेल्स का बहुत बड़ा योगदान यह था कि द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को उन्होंने प्राकृतिक विज्ञानों पर लागू किया। वर्ग, शोषण और जेण्डर-विभेद के नृतत्वशास्त्रीय मूल की उनकी विवेचना अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके सर्वतोमुखी ज्ञान ने उनके लिए पदार्थ की गति के वस्तुगत रूपों को विद्याओं के विभेदीकरण का आधार बनाते हुए विज्ञानों के वर्गीकरण की सामंजस्यपूर्ण प्रणाली का विशदीकरण करना सम्भव बनाया। दार्शनिक वाद-विवादों में, वैज्ञानिक और आर्थिक नियतत्ववाद तथा अज्ञेयवाद की आलोचना करते हुए एंगेल्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद की आधारभूत प्रस्थापनाओं का विकास किया।

मार्क्स की मृत्यु के बाद एंगेल्स अन्तिम साँस तक यूरोप के समाजवादियों के शिक्षक, नेता और सलाहकार की भूमिका निभाते रहे। उल्लेखनीय है कि रूसी समाज और क्रान्तिकारी आन्दोलन के गहन अध्येता एंगेल्स ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में आसन्न रूसी क्रान्ति की भविष्यवाणी कर दी थी। उनका मानना था कि इस क्रान्ति से यूरोप की मज़दूर क्रान्तियों को भी नया संवेग मिलेगा। एक बात और महत्वपूर्ण है। फ्रेडरिक एंगेल्स बढ़ती इजारेदारी की प्रवृत्ति और वित्तीय पूँजी (बैंकिंग एवं सट्टाबाज़ार) की बढ़ती भूमिका को अपने अन्तिम वर्षों में विश्व पूँजीवाद की कार्यप्रणाली में आ रहे एक अहम बदलाव के रूप में देखने लगे थे। इसी प्रवृत्ति को आगे चलकर लेनिन ने अपनी अमर कृति 'साम्राज्यवाद, पूँजीवाद की चरम अवस्था' में सूत्रबद्ध किया।

अपने मित्र कार्ल मार्क्स के गम्भीर और प्राय: अपने अध्ययनकक्ष और परिवार तक सिमटे रहने वाले स्वभाव के उलट, एंगेल्स ज़िन्दादिल, हँसोड़ और गप्पबाज़ थे। उन्हें पार्टियाँ भी पसन्द थीं और लोमड़ियों का शिकार भी। सामरिक मामलों में उनकी विशेषज्ञताओं के चलते उनके दोस्त उनको 'जनरल' कहकर बुलाया करते थे। मैंचेस्टर में अपने प्रथम प्रवास के दौरान ही एंगेल्स का एक आयरिश मज़दूर लड़की मेरी बार्न्स से प्रेम हो गया था। एंगेल्स का यह प्रेम 1854 तक गुप्त रहा। फिर 1854 से खुले तौर पर वे मेरी के साथ 'लिव इन रिलेशन' में रहने लगे। मेरी बाद में अपनी बहन लिज़्ज़ी के साथ मैंचेस्टर में बोर्डिंग हाउस चलाने का काम करने लगी थीं। 1863 में मेरी की अचानक मृत्यु हो गयी। कुछ समय बाद एंगेल्स और लिज़्ज़ी परस्पर प्रेम सम्बन्धों में बँध गये। 1870 में एंगेल्स लिज़्ज़ी के साथ मैंचेस्टर से लन्दन आ गये। वहाँ सितम्बर 1878 में लिज़्ज़ी की मृत्यु तक दोनों जीवन साथी के रूप में साथ रहे। 5 अगस्त 1895 को एंगेल्स का लन्दन में निधन हुआ। उनकी इच्छा के मुताबिक उनकी अस्थियाँ समुद्र में बिखेर दी गयीं।

दुनिया का मज़दूर वर्ग एंगेल्स के उदात्त शौर्यपूर्ण जीवन, मार्क्स के साथ उनकी ग्रीक मिथकों जैसी मित्रता और उनके महान वैचारिक अवदानों पर हमेशा गर्व करता रहेगा। हम अपने 'जनरल' को कभी भुला नहीं सकते।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

चैट जीपीटी और "मानव समाज पर ख़तरा!"

● सनी

चैट जीपीटी नाम के सॉफ़्टवेयर के बाज़ार में उतरते ही एक बार फिर मशीनों द्वारा मानव को ग़ुलाम बना लेने की कल्पना को हवा मिली। यह इस सॉफ़्टवेयर की निर्माता कम्पनी 'ओपन एआई' की सोचे-समझे तौर पर तय की गयी विज्ञापन नीति भी थी, जिस कारण अचानक ही अख़बारों, टीवी चैनलों और सोशल मीडिया पर यह ख़बर तेज़ी से फैली।

चैट जीपीटी और गूगल बोर्ड अनुवाद करने, कोड लिखने तथा इण्टरनेट से बिखरी जानकारी को तरतीब से पेश करने में काम आ रहा है। यह एक अनुवाद करने वाला एआई (आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस यानी कृत्रिम मेधा) है जो एक भाषा का दूसरी में बेहतर अनुवाद करता है। आज स्मार्ट फोन में गूगल असिस्टेंट, सिरी से लेकर गूगल इमेज सर्च, कम्प्यूटर गेम्स में तथा शेयर बाज़ार के उतार-चढ़ाव को समझने तक में आर्टिफिशियल इण्टेलिजेंस का इस्तेमाल हो रहा है। हालाँकि इसका इस्तेमाल सर्न की लैबोरेटरी, नासा और तमाम शोध संस्थान लम्बे अरसे से वैज्ञानिक प्रयोगों की गणना को आसान बनाने के लिए कर ही रहे हैं, परन्तु अब इसे बाज़ार में ऐप के रूप में बिक सकने वाले माल के रूप में उतारा गया है, जिस कारण ही इसे लेकर बुर्जुआ मीडिया द्वारा अनर्गल धुन्ध फैलायी जा रही है।

उजरती ग़ुलामी के कट्टर समर्थक और ट्विटर (अब 'एक्स') के मालिक एलोन मस्क से लेकर तमाम पूँजीपतियों ने मशीनों द्वारा भविष्य में "मानव समाज को ग़ुलाम" बनाये जाने की चिन्ता प्रकट की है! यह पूँजीवादी व्यवस्था के वर्चस्व का ही उदाहरण है। पूँजीपति वर्ग ही मानवता को ख़तरे की तरफ़ धकेल रहा है और दूसरी तरफ़ समूची मानवता को 'मशीनों' से बचा लेने की अपील कर रहा है। मानवता को ख़तरा तो है, पर वह पूँजीवादी व्यवस्था और पूँजीपति वर्ग से है। परन्तु इस समस्या को ही बुर्जुआ वर्ग विचारधारात्मक तरीके से पलटकर समूची मानवता के लिए ख़तरे के रूप में मशीनों को ही दोष दे रहा है। असल सवाल 'मशीन बनाम मानवता' का नहीं है बल्कि 'पूँजीवाद बनाम मानवता' का है। हालाँकि यह चर्चा पहली बार नहीं हो रही है। हमारे सामने एक बार फिर से प्रचार का वही शोर है, जो डीप ब्लू कम्प्यूटर द्वारा महान शतरंज खिलाड़ी गैरी कास्पारोव को हराने के समय उठा था। 2019 में भी 'अल्फा गो' द्वारा बोर्ड खेल 'गो' के बेहतरीन खिलाडियों को हराने पर ऐसा ही शोर उठा था।

आम मज़दूर आबादी में इस तरह की ख़बरें तमाम सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों पर प्रचलित भी हो रही हैं। यूट्यूब पर तमाम चैनल इस तरह की ख़बरों को दिखाते हैं। इन ख़बरों में यह डर पेश किया जा रहा कि एआई से संचालित मशीनें मानव को उत्पादन से हटा देंगी। इण्टरनेट से लेकर अख़बारों में चैट जीपीटी द्वारा परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने, कई नौकरियों को ख़त्म करने की बात होती रही। **कहा जा रहा है कि बुनियादी उत्पादन की गतिविधियों से लेकर उत्पादन की हर गतिविधि में भविष्य में मज़दूरों की ज़रूरत नहीं होगी। एक ऐसी दुनिया होगी जहाँ सभी काम मशीनें करने लगेंगी और मेहनतकश आबादी बेरोज़गार सड़कों पर घूमेगी।** ऐसा दिखाया जा रहा है कि मशीन चित्र बनाने लगी है, कहानी लिखने लगी है, वैज्ञानिक प्रयोग करने लगी है यानी संज्ञान के धरातल और मनोवेग के धरातल पर भी मशीनें मानवीय चेतना को हटा देंगी।

सबसे पहले मेहनतकशों को यह समझ लेना चाहिए कि यह कोरी कल्पना और गप है। पहली बात तो यह कि मशीनें मानव का उत्पाद हैं। भविष्य में निश्चय ही उत्पादन की कई बुनियादी गतिविधियों में प्रत्यक्ष मानव श्रम की ज़रूरत नहीं रहेगी। लेकिन इसमें ताज्जुब या डर की कोई बात नहीं है। बल्कि कहें कि यही तो मशीन का प्रकार्य है। मशीन श्रम के सभी उपकरणों के समान मानवीय अंगों और मस्तिष्क ही विस्तार होती है। परन्तु मौजूदा व्यवस्था के केन्द्र में मानव नहीं है, बल्कि मुनाफ़ा होता है जिस वजह से यह स्थिति पैदा होती है और इस कल्पना को पंख लगते हैं कि मशीन मानव को ग़ुलाम बना देगी। मशीन बनाम मानव का द्वन्द्व सामने आ जाता है जो कि मूलत: अपने आप में मशीन और मनुष्य का द्वन्द्व नहीं है बल्कि श्रम और पूँजी के बीच का द्वन्द्व है, मनुष्यों और एक मुनाफ़ा-केन्द्रित व्यवस्था के बीच का द्वन्द्व है। इसे थोड़ा ऐतिहासिक और वैज्ञानिक तौर पर समझते हैं।

पूँजीवादी उत्पादन पद्धति में मशीन की भूमिका

आर्टिफिशियल इण्टेलिजेंस को मानव चेतना के विरुद्ध रखना अकारण नहीं है। ऐसा क्यों किया गया है, इसे समझने से पहले हमें यह समझना होगा कि एआई और कुछ नहीं बल्कि स्वचालन है तथा इस किस्म का मशीनी ऑटोमेशन पूँजीवाद के इतिहास में औद्योगिक क्रान्ति के शुरू होने के साथ, यानी अट्ठारहवीं सदी के अन्त और उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में ही पैदा हो गया था। उत्पादन की प्रक्रिया में मनुष्य प्रकृति को अपनी ज़रूरतों के अनुसार परिवर्तित करता है। मशीन इस प्रक्रिया में इस्तेमाल होने वाले उत्पादन के साधनों का ही हिस्सा होती है। श्रम की प्रक्रिया में कर्ता के रूप में मानव श्रम कच्चे मालों (प्राकृतिक या निर्मित) को अपनी ज़रूरत के अनुसार श्रम के साधनों के ज़रिये बदल देता है। श्रम के औज़ार में साधारण पत्थर के औज़ार, हल, टैक्टर से लेकर आधुनिक मशीन तक शामिल है। खुद एआई यानी जीपीटी जैसे सॉफ़्टवेयर भी श्रम का उत्पाद हैं और श्रम के साधन भी हैं। तमाम उत्पादक कार्रवाइयों में चैट जीपीटी का आना और इस कारण मज़दूरों का काम से निकाला जाना गुणात्मक तौर पर कोई नई प्रक्रिया नहीं है। मशीनें निरपेक्ष तौर पर देखें तो पूँजीवादी समाज में मज़दूरों को निरन्तर उत्पादन से बाहर करती हैं। यदि पूँजीवादी व्यवस्था में मुनाफ़े की औसत दर अच्छी है, और विस्तारित पुनरुत्पादन अधिक दर से हो रहा हो, तो मशीनों द्वारा विस्थापन के बावजूद कुल सक्रिय श्रमिकों की संख्या बढ़ती भी है, हालाँकि अब प्रति श्रमिक मशीन की संख्या बढ़ जाती है। बहरहाल, हथकरघे को हटाकर आने वाली पावरलूम हो या एक्सेल शीट पर आँकड़े भरने वाले मज़दूर को हटाकर आया एआई, स्वचालन का ही हिस्सा है। मार्क्स के अनुसार "औद्योगिक क्रान्ति का आगमन मशीन से होता है, जो केवल एक औज़ार का इस्तेमाल करने वाले मज़दूर का अतिक्रमण कर कई समानान्तर औजारों के तन्त्र से संचालित होती है, जिसमें एक चालक शक्ति गति पैदा करती है चाहे ऊर्जा का स्रोत कुछ भी हो।" (मार्क्स, *पूँजी*, खण्ड-1) चैट जीपीटी का कई मानसिक क्रियाओं को अंजाम देना भी स्वचालन की प्रक्रिया का ही एक चरण है जिसमें मानसिक श्रम में लगे मज़दूरों को हटाकर मशीन उनकी जगह ले रही है। यह प्रक्रिया तब से ही शुरू हो जाती है जब से उत्पादन की प्रक्रिया में मशीनरी का इस्तेमाल होता है। मार्क्स लिखते हैं:

"पूँजीपति और उजरती मज़दूर के बीच प्रतिस्पर्धा पूँजी के उद्भव के समय से शुरू होती है। यह मैन्युफैक्चर के समूचे दौर में प्रचण्ड रूप से जारी था। परन्तु केवल मशीनरी के आगमन के बाद से मज़दूर ने ख़ुद श्रम के साधन से ही संघर्ष किया है, जो पूँजी का भौतिक मूर्त रूप ही है। वह उत्पादन के साधन के विशिष्ट रूप के विरुद्ध संघर्ष छेड़ देता है, जो पूँजीवादी उत्पादन पद्धति का भौतिक आधार होता है।

"परन्तु मशीनें न केवल मज़दूर के एक ऐसे प्रतिद्वन्द्वी का ही काम करती हैं, जो मज़दूर को परास्त कर देता है और जो उसे सदा बेकार बना देने पर तुला रहता है, वे मज़दूर से बैर रखने वाली एक शक्ति का भी काम करती हैं। पूँजी ढोल पीटकर इस बात का ऐलान करती है और इसी रूप में मशीनों का उपयोग किया करती है। हड़तालों को, पूँजी के निरंकुश शासन के ख़िलाफ़ मज़दूर-वर्ग के समय-समय पर फूट पडने वाले विद्रोहों को, कुचलने का सबसे शक्तिशाली अस्त्र मशीनें होती हैं।" (मार्क्स, पूँजी, खण्ड-1)

मार्क्स उत्पादन की प्रक्रिया में मशीन की प्रणाली और स्वचालन को परिभाषित करते हैं :

"एक बार पूँजी की उत्पादन प्रक्रिया में मातहत किए जाने के बाद, श्रम के साधन विभिन्न रूपान्तरण से होकर गुज़रते हैं, जिसकी परिणति है मशीन, या कहें, मशीनरी की स्वचालन प्रणाली (मशीनरी की प्रणाली: स्वचालन इसका सबसे पूर्ण, सबसे उचित रूप है, जो अकेले मशीनरी को एक प्रणाली में तब्दील कर देता है) जिसे एक ऑटोमेटॉन गति देता है, एक स्वचालित गतिवान शक्ति से जो ख़ुद चलती है। यह स्वचालन जिसमें अनेक यान्त्रिक और मानसिक अंग होते हैं, जिससे मज़दूर खुद इसकी सचेतन कड़ी मात्र के तौर पर ढलते जाते हैं।" (मार्क्स, ग्रुण्डरिसे)

मार्क्स के अनुसार:

"जब कोई मशीन बिना आदमी की मदद के कच्चे माल का परिष्कार करने के लिये आवश्यक समस्त क्रियायों को पूरा करने लगती हैं और जब उसे आदमी की केवल देखरेख की ही आवश्यकता रह जाती है, तब मशीनों की स्वचालित संहति तैयार हो जाती है। इस संहति का तफसीली बातों में निरन्तर सुधार किया जा सकता है।

"मशीनों की ऐसी संगठित संहति, जिसे संचालक यन्त्र के द्वारा एक केन्द्रीय स्वचालित यन्त्र से गति प्राप्त होती है, मशीनों से होने वाले उत्पादन का सबसे अधिक विकसित रूप होती है। यहाँ पर अलग-अलग काम करने वाली मशीनों के बजाय एक यान्त्रिक दैत्य होता है, जिसकी देह पूरी फैक्टरियों को भर देती है और जिसकी राक्षसी शक्ति, जो शुरू में उसके दैत्याकार अवयवों की नपी-तुली और धीमी गति के आवरण के पीछे छिपी हुई थी, आखिर अब उसकी असंख्य कार्यकारी इन्द्रियों के कोलाहलपूर्ण आवर्तन के रूप में फूट पड़ती है।" (मार्क्स, पूँजी, खण्ड-1)

उत्पादन की भिन्न-भिन्न शाखाओं में यह स्वचालित दैत्य आज मार्क्स के समय से बहुत अधिक फैल चुका है। आज किसी ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री में मौजूद रोबोटिक आर्म और किसी सॉफ़्टवेयर उद्योग में चैट जीपीटी के बीच अन्तर केवल अलग किस्म के उत्पादन का है। दोनों ही मशीन हैं जो मज़दूर की गतिविधि के अमूर्तीकरण से ही पैदा होती है, उसकी यह गतिविधि शारीरिक हो चाहे मानसिक। रोबोटिक आर्म और चैट जीपीटी मज़दूर की ही गतिविधि का अमूर्तीकरण है।

मार्क्स कहते हैं कि "बल्कि, अब यह मशीन है जो मज़दूर के स्थान पर कौशल और ताक़त की स्वामिनी है, वह ख़ुद दक्ष है, और मानो उन यान्त्रिक नियमों में स्वयं उसकी आत्मा हो जिनके माध्यम से वह कार्य करती है। यह कोयला, तेल आदि की खपत करती है...वैसे ही जैसे एक मज़दूर खाना खाता है, ताकि उसकी गति लगातार बनी रहे। मज़दूर की गतिविधि, जो गतिविधि का मात्र अमूर्तीकरण बनकर रह जाती है, वह सभी तरफ़ से मशीनरी के गति से निर्धारित और विनियमित होती है, ना कि इसका उल्टा। वह विज्ञान जो मशीनरी के निर्जीव अंगों के निर्माणानुसार उनको एक ऑटोमेटॉन के समान उद्देश्यपूर्ण तरीके से संचालित करता है, वह मज़दूर की चेतना में विद्यमान नहीं होता, बल्कि मशीन के ज़रिए एक परायी शक्ति की तौर पर, स्वयं मशीन की अपनी शक्ति के रूप में, मज़दूर पर कार्य करता है।" (मार्क्स, ग्रुण्डरिसे)

चैट जीपीटी को मार्क्स के उपरोक्त कथन की आखिरी पंक्ति के मदद से बखूबी समझा जा सकता है। प्राकृतिक विज्ञान मज़दूर की चेतना से स्वतन्त्र होकर उसे संचालित करता है। यह मानव ज्ञान ही है जिसे मानव के बरक्स रख दिया जाता है। चैट जीपीटी भी और कुछ नहीं मानवीय ज्ञान से संचालित एक मशीनरी ही है। आज जिन परिकल्पनाओं को बल मिल रहा है उसका भौतिक आधार पूँजीवादी उत्पादन पद्धति में है। मज़दूर के श्रम को मशीन सुगम बनाने की बजाय उत्पीड़न बढ़ाती है।

मार्क्स कहते हैं, "दस्तकारियों तथा हस्तनिर्माण में मज़दूर औज़ार को इस्तेमाल करता है, फैक्ट्री में मशीन मज़दूर को इस्तेमाल करती है। वहाँ श्रम के औजारों की क्रियाएँ मज़दूर से शुरू होती हैं, यहाँ पर उसे खुद मशीन की क्रियाओं का अनुकरण करना पड़ता है। हस्तनिर्माण में मज़दूर एक जीवित संघटन के अंग होते हैं। फैक्टरी में मज़दूरों से स्वतन्त्र एक निर्जीव यन्त्र होता है और मज़दूर इस यन्त्र के मात्र जीवित उपांगों में बदल जाते हैं।" आगे मार्क्स कहते हैं कि "मशीन से श्रम कुछ हल्का हो जाता है, पर यह चीज़ भी यहाँ पर एक ढंग की यातना बन जाती है, क्योंकि मशीन मज़दूर को काम से मुक्त नहीं करती, बल्कि काम की सारी दिलचस्पी ख़तम कर देती है। हर प्रकार का पूँजीवादी उत्पादन जिस हद तक न सिर्फ श्रम-प्रक्रिया, बल्कि अतिरिक्त मूल्य पैदा करने की प्रक्रिया भी होता है, उस हद तक उसमें एक समान विशेषता होती है। वह यह कि उसमें मज़दूर श्रम के औजारों से नहीं, बल्कि श्रम के औज़ार मज़दूर से काम लेते हैं। लेकिन यह विपयण पहले-पहल केवल फैक्टरी व्यवस्था में ही प्राविधिक एवं इन्द्रीगम्य वास्तविकता प्राप्त करता है। एक स्वचालित यन्त्र में रूपान्तरित हो जाने के फलस्वरूप श्रम का औज़ार श्रम प्रक्रिया में पूँजी की शकल में, यानी उस मृत श्रम के रूप में मज़दूर के सामने खड़ा होता है जो जीवित श्रम-शक्ति पर हावी रहता है और चूस-चूसकर उसका सत निकाल लेता है।" (मार्क्स, पूँजी खण्ड-1)

यही पूँजीवादी व्यवस्था का वह भौतिक आधार है जिस वजह से मानव बनाम मशीन की परिकल्पना पैदा होती

(पेज 8 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016